विमुद्रीकरण:

कालेधन पर करारी चोट

SPMRF

पराक्रमयुता प्रज्ञा राष्ट्राभ्युदयशालिनी

Wisdom with valour brings glory to the nation

डॉ श्यामा प्रसाद मुकर्जी
शोध अधिष्ठान

“7 नवंबर तक ये सभी पूछते थे कि मोदी जी, आपने काले-धन के लिए क्या किया, अब कहते हैं कि मोदी जी, आपने काले-धन के लिए यह क्यों किया? सपा, बसपा, कांग्रेस, ममता, केजरीवाल - सभी आजकल नोटबंदी की माला जप रहे हैं, मुझे तो मालूम ही नहीं पड़ता कि इनका क्या लुट गया है, नोटबंदी के फैसले से तो आतकवाद, नक्सलवाद, ड्रग्स और जाली नोटों के कारोबार पर चोट पहुँची है। इन पार्टियों की इच्छाशक्ति ही नहीं है कि राजनीति के अंदर से काला धन जाए, मैं तो आज भी विपक्ष के सभी नेताओं को अपील करना चाहता हूँ कि मोदी जी ने आगे बढ़कर चर्चा के लिए एक गंभीर विषय को रखा है, इसे स्वीकार कर चर्चा के लिए आगे आइये और राजनीति के अंदर शुचिता लाने का काम कीजिये।

हमें भी फिक्र है कि लाइनें लग रही है, थोड़ी तकलीफ भी लोगों को उठानी पड़ रही हैं, प्रधानमंत्री जी ने पहले दिन ही कहा था कि 50 दिन तक तकलीफ होगी लेकिन 50 सालों के लिए देश सुधर जाएगा। उन्होंने कहा कि नोटबंदी के फैसले से दर्द उनको हो रहा है जिनका भ्रष्टाचार से अर्जित अरबों-खरबों का काला धन लुट गया है, रद्दी में तब्दील हो गया है। नोटबंदी के फैसले का पूरा देश और पूरी दुनिया स्वागत कर रहे हैं। इसका विरोध कांग्रेसी कर रहे हैं जिनका यूपीए के शासनकाल में घोटालों के जरिए कमाया 12 लाख करोड़ रुपया अब रद्दी में तब्दील हो गया है।”

अमित शाह

राष्ट्रीय अध्यक्ष, भारतीय जनता पार्टी

विमुद्रीकरणः
कालेधन पर करारी चोट

संकलनकर्ता

शिवानंद द्विवेदी

SPMRF
Wisdom with valour brings glory to the nation

डॉ श्यामा प्रसाद मुकर्जी
शोध अधिष्ठान

अनुक्रमणिका

क्रम सं	लेख	पेज़
1	● नोटबंदी का अतार्किक विरोध कर देश का भरोसा खोता विपक्ष - **हर्षवर्धन त्रिपाठी**	6
2	● खुली पाक कलाकारों के काले धन की पोल, स्टिंग - **शिवानन्द द्विवेदी**	8
3	● गरीबों-मजदूरों के लिए लाभकारी है नोटबंदी - **अनंत विजय**	9
4	● चार दशकों के राजनीतिक सफर में हर अवसर पर विफल रहे हैं मनमोहन सिंह - **शिवानन्द द्विवेदी**	11
5	● नकदी के जाल से निकलकर डिजिटल अर्थव्यवस्था की - **आयुष आनंद**	13
6	● निकाय चुनाव नोटबंदी के निर्णय पर जनता की मुहर - **शिवानन्द द्विवेदी**	15
7	● निकाय चुनावों में भाजपा की इस बम्पर जीत के बाद तो नोटबंदी के विरोध की राजनीति बंद करें विपक्षी - **केशव झा**	17
8	● खबरदार, यह ईमानदारों की कतार है, बेईमान दूर रहें - **शिवानन्द द्विवेदी**	18
9	● नोटबंदी : आम जन कर रहे सरकार का समर्थन काला धन धारकों में मचा हड़कंप - **कनिष्का तिवारी**	19
10	● नोटबंदी का फिजूल विरोध कर खुद को 'संदिग्ध' बना रहा विपक्ष - **आदर्श तिवारी**	20
11	● नोटबंदी का विरोध करने वालों से सावधान रहने की जरूरत - **पुष्कर अवस्थी**	21
12	● नोटबंदी के निर्णय से इतने हलकान क्यों हैं विपक्षी दल - **पीयूष द्विवेदी**	22
13	● नोटबंदी के निर्णय से खुश है जनता - **अरविन्द जयतिलक**	23
14	● नोटबंदी कैशलेस अर्थव्यवस्था की तरफ बढ़ता देश - **सुनीता मिश्रा**	24
15	● नोटबंदी पर जनसमर्थन की सूचक है निकाय चुनावों में भाजपा की जीत - **पीयूष द्विवेदी**	25
16	● प्रधानमंत्री के सवालों का जवाब दें नोटबंदी का विरोध कर रहे विपक्षी - **लोकेन्द्र सिंह**	26
17	● मोदी सरकार को अर्थनीति सिखाने से पहले ज़रा अपनी गिरेबान में तो झाँक लीजिये, मनमोहन सिंह जी! - **अरविन्द जयतिलक**	28
18	● राष्ट्र-निर्माण के आगे निजी सुख-दुःख का नहीं होता महत्व - **प्रणय कुमार**	29
19	● संसद ठप्प करने की नकारात्मक राजनीति से बाज आयें विपक्षी दल - **आदर्श तिवारी**	30
20	● समय की मांग है नकदी रहित अर्थव्यवस्था - **पीयूष द्विवेदी**	31
21	● Tracing history of black money: Past and present - **ANIRBAN GANGULY**	33
22	● By-Poll Results : End game anti-demonetization crusaders ? - **AJAY KASHYAP**	35
23	● Support for Demonetisation is Wide – only the Unwise and Unethical Oppose it - **ANIRBAN GANGULY**	37
24	● Demonetisation and the vanishing stone-pelters of Kashmir - **AJAY KASHYAP**	39
25		

भूमिका

आठ नवंबर की शाम आठ बजे प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने राष्ट्र को संबोधित किया. राष्ट्र के नाम अपने इस संबोधन में प्रधानमंत्री ने एक बड़ा और ऐतिहासिक ऐलान करते हुए पांच सौ और एक हजार के नोट बंद करने की घोषणा की. कालेधन के खिलाफ प्रधानमंत्री द्वारा उठाया गया यह कदम भारतीय इतिहास में एक साहसिक एवं ऐतिहासिक कदम के रूप में था. जनहित की चिंता के अनुसार कुछ जरुरी छूट के साथ यह फैसला आठ नवंबर से लागू कर दिया गया. इस फैसले के बाद देश में नोटबंदी अर्थात विमुद्रीकरण की इस कार्यवाही पर बड़ी बहस शुरू हो गयी. कुछ विपक्षी दल अचानक जनहितैषी बनने का ढोंग करते हुए नोटबंदी के खिलाफ विरोध में उतर गए. हालांकि इस फैसले को जनता का भरपूर समर्थन मिलता दिख रहा है. नोटबंदी के बाद देश के महाराष्ट्र, गुजरात और पंजाब आदि राज्यों में हुए निकाय चुनावों में भाजपा को बड़ी विजय मिली है, जिसे नोटबंदी पर जनता के मुहर के रूप में देखा जा रहा है. चूँकि भाजपा-नीत केंद्र सरकार पहले दिन से कालेधन को लेकर सख्त रही है और गत ढाई वर्षों सरकार द्वारा समय-समय पर ठोस कदम उठाए जाते रहे हैं. कालेधन और भ्रष्टाचार के खिलाफ सरकार की प्रतिबद्धता शुरू से ही दिखी है, और यह कार्यवाही उसी दिशा में एक बड़ी चोट की तरह है.

विमुद्रीकरण के मुद्दे पर देश में खूब बहस चली है. इस विषय पर वैचारिक वेब पोर्टल नेशनलिस्ट ऑनलाइन डॉट कॉम पर लेखों की श्रृंखला चलाई गयी है. इसके माध्यम से नोटबंदी से जुड़े हर पहलू की पड़ताल करने की कोशिश की गयी है. नोटबंदी के मुद्दे पर नेशनलिस्ट ऑनलाइन डॉट पर प्रकाशित तमाम लेखों को एक जगह संकलित करके एक ई-बुकलेट बनाने की पहल डॉ श्यामा प्रसाद मुकर्जी शोध अधिष्ठान द्वारा की जा रही है. इस संकलन में जितने भी लेख लिए गए हैं, सभी लेखों के लिए अधिष्ठान लेखकों के प्रति आभारी है.

डॉ अनिर्बान गांगुली

निदेशक, डॉ श्यामा प्रसाद मुकर्जी शोध अधिष्ठान

अतार्किक विरोध कर देश का भरोसा खोता विपक्ष

हर्षवर्धन त्रिपाठी

नोटबंदी के बाद जनता के मन में एक भावना आसानी से देखी जा सकती है कि प्रधानमंत्री के इस फैसले को वह हर तरह की परेशानी के बाद भी काला धन रखने वालों और भ्रष्टाचारियों के खिलाफ देख रही है। और जनता की इस भावना ने दरअसल देश के विपक्ष के लिए कतार में लगी जनता से ज्यादा परेशानी की जमात खड़ी कर दी है। विपक्ष इस कदर परेशान है कि पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी परेशानी के इस समय में बंगाल की जनता को छोड़कर दिल्ली की आजादपुर मंडी में रैली कर रही हैं। रैली में उनके साथ आम आदमी पार्टी के नेता और दिल्ली के मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल हैं। ये कितनी सही राजनीति है या खराब राजनीति को सही साबित करने की कोशिश, ये इससे भी समझ में आता है कि दिल्ली के मुख्यमंत्री के तौर पर अरविंद केजरीवाल ने दिल्ली की परेशान जनता की परेशानियों को कम करने की कोई कोशिश नहीं की। और ममता बनर्जी तो इस मामले में और भी खराब राजनेता साबित होती दिख रही हैं। जब मुख्यमंत्री के तौर पर ममता बनर्जी को पश्चिम बंगाल की जनता को नोटबंदी से होने वाले नफा-नुकसान के बारे में समझाना चाहिए था, उनके जीवन की मुश्किलों को आसान करने के रास्ते बताने चाहिए थे, उस समय ममता बनर्जी देश की राजधानी दिल्ली के आजादपुर में रैली कर रही थीं। ममता और केजरीवाल ये कह रहे थे कि कभी भी इसकी वजह से देश में दंगे हो सकते हैं। इतना ही नहीं उन्होंने एक संयुक्त विपक्ष जैसा माहौल बनाने की कोशिश की। मुद्दा सही हो तो ये कोशिश सराही जानी चाहिए। लेकिन, यहाँ ऐसा कुछ नहीं था।

साफ है कि ममता बनर्जी, अरविंद केजरीवाल, समाजवादी पार्टी, कांग्रेस आदि का ये राजनीतिक विरोध है। लेकिन, बड़ा सवाल है कि पूरी तरह से आर्थिक फैसले को क्या विपक्ष पूरी तरह से राजनीतिक विरोध की कसौटी पर कसकर जनता का विश्वास जीत सकता है ? इसका जवाब देश के दो राज्यों के मुख्यमंत्रियों के व्यवहार से आसानी से समझा सकता है। इन दो मुख्यमंत्रियों में से एक हैं विधानसभा चुनाव के ठीक पहले बीजेपी से अलग हुए नीतीश कुमार और दूसरे अभी बीजेपी के साथ खड़े चंद्रबाबू नायडू। नायडू दक्षिण भारत में भाजपा के मजबूत और महत्वपूर्ण सहयोगी हैं और नीतीश कुमार उत्तर भारत में मोदी विरोधी गठजोड़ के महत्वपूर्ण नेता। लेकिन, इन दोनों ही मुख्यमंत्रियों ने हिन्दुस्तान के इस सबसे बड़े आर्थिक फैसले पर आर्थिक नजरिये से प्रतिक्रिया देकर राजनीतिक बढ़त भी हासिल कर ली है। बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार पूरी तरह से इस फैसले के साथ खड़े हैं। नीतीश कुमार ने कहा कि इससे काला धन, भ्रष्टाचार पर रोक लगेगी। आंध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री चंद्रबाबू नायडू ने तो पहले ही प्रधानमंत्री को चिट्ठी लिखकर बड़े नोटों को खत्म करने की मांग की थी, जिससे काले धन पर रोक लगाई जा सके।

नोटबंदी के सरकार के फैसले के खिलाफ विपक्ष को तर्कों के साथ आना चाहिए था। लेकिन, हुआ क्या ? हुआ ये कि दरअसल विपक्ष के पास सरकार के नोटबंदी के फैसले के विपक्ष में कोई सटीक तर्क नहीं है। यहां तक कि कतार में लगी जनता ने भी जब अरविंद केजरीवाल जैसे आंदोलनप्रिय और आरोप उछालकर राजनीति करने वाले नेताओं को भगाना शुरू किया तो भी इन्हें समझ नहीं आया कि जनता क्या चाहती है ? ये समझना इसलिए भी जरूरी है क्योंकि, राजनीति के अंतिम परिणाम के तौर पर नेता जनता को अपने पक्ष में चाहता है। ये बात विपक्ष के नेता नहीं समझ सके और कुतर्क की तरफ बढ़ चले। उससे भी बात नहीं बनी तो साजिश के सिद्धान्त पर बाखूबी काम किया गया। उदाहरण के तौर पर भारतीय जनता पार्टी की बंगाल इकाई के खाते में दो किस्तों में एक करोड़ रुपये जमा करने की बात प्रचारित की गई। जिससे साबित किया जा सके कि नोटबंदी की खबर पहले ही लीक कर दी गई थी। दूसरा साजिशी सिद्धान्त आया जिसमें भारतीय जनता पार्टी की उत्तर प्रदेश इकाई के अध्यक्ष केशव प्रसाद मौर्य की बेटी को 2000 के नोटों की गड्डियों के साथ दिखाया गया। वो खबर पूरी तरह से गलत निकली। मौर्य ने बताया कि उनके कोई बेटी है ही नहीं। ये कुछ उदाहरण भर हैं। और ये उदाहरण साबित करते हैं कि दरअसल विपक्ष के पास इस मामले विरोध के लिए कोई सही तर्क, तथ्य हैं ही नहीं।

ऐसा नहीं है कि विपक्ष को राजनीति के लिए मौका नहीं मिल सकता था। लेकिन, दो बातें थीं। पहली ये कि कतारों में खड़े लोगों को नरेंद्र मोदी के किए पर भरोसा है। और दूसरा ये कि विपक्ष के नेताओं की विश्वसनीयता और मंशा संदेह के दायरे में आती रही। इस कदर कि दिल्ली के लक्ष्मीनगर इलाके में अरविंद केजरीवाल आम आदमी पार्टी के कार्यकर्ताओं के साथ लोगों का हाल जानने पहुंचे, तो लोगों ने उन्हीं के खिलाफ नारे लगाने शुरू कर दिए। ये सब उसके बावजूद हो रहा था, जब मीडिया के बड़े चेहरे ये साबित करने पर तुले हुए थे कि लोग बुरी तरह से परेशान हैं। किसी भी हाल में देश में 8 नवंबर के 8 बजे के बाद से हुए हर हादसे दुर्घटना को

नोटबंदी से जोड़ने की कवायद में सिर्फ विपक्षी नेता ही शामिल नहीं थे। बड़े पत्रकार, लेखक के तौर पर समाज में पहचाने जाने वाले लोग सरकार के फैसले के खिलाफ कुछ भी करने को उतारू हैं। दरअसल ये कुछ भी करने पर उतारू जमात में बहुतायत लोग वही हैं, जो किसी भी हाल में नरेंद्र मोदी को प्रधानमंत्री की कुर्सी पर देखने को तैयार नहीं थे। और नहीं थे, वाली मानसिकता अभी भी जड़ अवस्था में है। इसका अद्भुत उदाहरण देखने को मिलता है कि करीब 150 ऐसे ही बड़े बुद्धिजीवियों ने प्रधानमंत्री को चिट्ठी लिखकर इस फैसले को वापस लेने की मांग की है। बुद्धिजीवियों की चिट्ठी है, इसलिए पूरी तरह से उसमें चिन्ता आम आदमी के कष्टों की ही की गई है। लेकिन, कमाल की बात ये भी है कि नोटबंदी से आम आदमी को होने वाले कष्टों की चिन्ता करने वाले ज्यादातर वही लोग हैं, जिन्होंने असहिष्णुता को इस देश का वर्तमान चरित्र बता देने की कोशिश की और देश से मिले सम्मानों को वापस कर दिया था। देश में बुद्धिजीवी, लेखक के तौर पर सम्मान पाने वाले ढेरों लोग भी जब इस आर्थिक फैसले पर राजनीतिक तरीके से प्रतिक्रिया देते हैं, तो संदेह होता है कि क्या मोदी विरोध के नाम पर सरकार के हर फैसले का विरोध करके जनता को गुमराह करने की कोशिश, उनका मानस बदलने की कोशिश कहां तक सही है। कमाल देखिए कि जाने माने पत्रकार शेखर गुप्ता रुपये की कमजोरी पर ये सवाल पूछते हैं कि क्या देश में रिजर्व बैंक गवर्नर हैं। क्या रुपये का डॉलर के मुकाबले कमजोर होना देश के उद्योगों के लिए ठीक है। इसके लिए कुछ करने की जरूरत भी शेखर बताते हैं। 16 नवंबर को किया गया शेखर गुप्ता का ये ट्वीट इतना निर्दोष नहीं है। दरअसल शेखर विमुद्रीकरण के इस समय में रुपये के गिरते भाव को जोड़ने की कोशिश करते दिखते हैं। जबकि, सच्चाई ये है कि रुपये की कमजोरी नहीं हुई है, डॉलर की मजबूती हुई है। डोनाल्ड ट्रंप का राष्ट्रपति बनना इसकी बड़ी वजह बताया जा रहा है।

इसी तरह की एक कोशिश हुई जब स्टेट बैंक ऑफ इंडिया के सात हजार करोड़ रुपये से ज्यादा के कर्ज को बट्टे खाते में डालने की खबर को माल्या की कर्ज माफी के तौर पर कुप्रचारित किया गया। जबकि, सच ये है कि नरेंद्र मोदी की सरकार के ढाई साल के कार्यकाल में माल्या और दूसरे डिफॉल्टर से कर्ज वसूली की प्रक्रिया जितनी तेजी से पूरी करने की कोशिश हुई, वैसी कोशिश कभी नहीं हुई। बल्कि, पिछली सरकार के समय में ही ज्यादातर सरकारी बैंकों ने बड़े कर्ज दिए और कॉर्पोरेट से उनकी वसूली नहीं हो सकी। सच्चाई यही है कि आर्थिक मामलों पर नरेंद्र मोदी की सरकार बहुत ही चरणबद्ध तरीके से चल रही है। जिसमें सरकार आने के बाद सबसे पहले काला धन बनने से रोकने की कोशिश शुरू हुई। उसके बाद बेनामी संपत्ति पर रोक लगाने कोशिश, लोगों को अपना काला धन बताकर उसे बैंकिंग सिस्टम में वापस लाने की कोशिश। ये सब बहुत चरणबद्ध तरीके थे। इसी बीच में सरकार ने बैंकों का एनपीए खत्म करने और बैंकों की स्थिति मजबूत करने के लिए पूर्व सीएजी विनोद राय की अगुवाई में बैंक बोर्ड ब्यूरो बना दिया। सबसे बड़ी बात कि इन सारे कदमों के साथ नरेंद्र मोदी जनता को ये भरोसा दिलाने में कामयाब रहे हैं कि ये फैसला पूरी तरह से आम जनता के हित में है।

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार हैं। ये उनके निजी विचार हैं।)

खुली पाक कलाकारों के काले धन की पोल, स्टिंग ऑपरेशन में हुए बेनकाब!

शिवानन्द द्विवेदी

भाजपानीत केंद्र सरकार द्वारा कालाधन पर रोक लगाने की दिशा में बड़ा कदम उठाते हुए पांच सौ एवं एक हजार के नोट बंद किए जाने और नए नोट जारी किए जाने के बाद से ही कालाधन का मुद्दा एकबार फिर विमर्श और चर्चा के केंद्र में आ गया है। सरकार की तरफ से एवं आम चर्चा में भी यह बात सामने आती रही है कि कालाधन का नेटवर्क महज देश के अंदर ही नहीं, बल्कि सीमापार तक फैला हुआ है। हाल में ही एक टीवी समाचार चैनल के स्टिंग ऑपरेशन में पाकिस्तानी सिनेमा कलाकारों को लेकर बड़ा खुलासा सामने आया है। स्टिंग के मुताबिक़ पाकिस्तान के तमाम सिनेमा कलाकार जो भारत में काम करते हैं, अपने भुगतान का एक ठीक-ठाक हिस्सा कैश में लेने की मांग करते हैं।

हाल ही में उड़ी हमले के बाद पाकिस्तानी कलाकारों पर प्रतिबन्ध को लेकर भी खूब गरमा-गरम बहस हो चुकी है। स्टिंग के अनुसार पाकिस्तानी कलाकार फवाद खान, मवारा होकेन और इमरान अब्बास जैसे कलाकार अपनी फीस का ठीक-ठाक हिस्सा कैश में लेने की मांग करते हैं। स्टिंग के अनुसार पाकिस्तानी कलाकार फवाद खान एक शादी समारोह में शामिल होने के लिए पचास लाख की फीस का पचीस फीसद रकम अपने यूएई के खाते में जमा कराने की शर्त अपने मैनेजर के माध्यम से रख रहे हैं। यानी अगर इस स्टिंग को सही माने तो यह फवाद खान का टैक्स चोरी वाया यूएइ कनेक्शन नजर आता है। बॉलीवुड में कई फिल्मे कर चुकीं मावरा होकेन के मैनेजर ने उनकी कुल फीस का बड़ा हिस्सा उनके आस्ट्रेलिया वाले खाते में जमा करने की मांग रखी। कुछ इसी तरह टैक्स और रकम छिपाने के हथकंडे इमरान अब्बास भी आजमाते नजर आ रहे हैं।

इस स्टिंग के बाद एक बहस फिर चली है कि क्या वाकई सीमापार के लोग भारत में काम करके धन कमाते हैं, लेकिन भारत सरकार को कर नहीं देते बल्कि वो पैसा बाहरी देशों के खातों में जमा करवा देते हैं। चूँकि, यह महज चंद सिनेमा कलाकारों तक का मामला नहीं है, बल्कि यह टैक्स चोरी के साथ-साथ भारत सरकार के साथ धोखाधड़ी करने का भी मामला है। सम्मानजनक ढंग से भारत में काम कर रहे पाकिस्तानी कलाकार यदि भारत सरकार के साथ इस स्तर पर छलावा एवं धोखाधड़ी करते नजर आ रहे हैं तो अंदाजा लगाया जा सकता है कि सीमापार से भारत के खिलाफ काम कर रहीं ताकतें किस स्तर पर देश को नुकसान पहुंचा रही होंगी। उनका अवैध कारोबार इस देश में किस स्तर पर चल रहा होगा। ये तमाम सवाल हमें न सिर्फ चौंकाते हैं, बल्कि भारत विरोधी ताकतों के खतरों से आगाह भी करते हैं। यह बात लम्बे समय से उठती रही है कि भारत में कालेधन के इस कारोबार में तस्करी, अवैध हथियारों का कारोबार, ड्रग्स का कारोबार सहित तमाम आपराधिक गतिविधियाँ शामिल हैं। इनमे से अधिकतर ऐसी गतिविधियाँ हैं, जहाँ भारत के बाहर से भारत विरोधी ताकतों का पैसा अलग-अलग माध्यमों से लगा हुआ है। लिहाजा इन पर पाबंदी लगना निहायत ही आवश्यक है। टैक्स चोरी के अलावा भी इसके बड़े खतरे हैं। हमें इस बात का अंदाजा नहीं है कि सार्वजनिक स्तर पर कानूनी ढंग से काम करने वाले पाकिस्तानी कलाकार जब इतनी सहजता से देश की सरकार को धोखा दे सकते हैं तो देश की सुरक्षा के खिलाफ काम कर रहे आतंकी संगठन किस स्तर पर सक्रिय होंगे।

लेकिन, कालेधन की समस्या से मुक्ति और नगदी में चल रहे काले व्यापार पर लगाम की दिशा में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के नेतृत्व वाली केंद्र सरकार ने जो ठोस कदम उठाया है, वो आजादी के बाद इस समस्या के सन्दर्भ में उठाया गया न केवल एक ऐतिहासिक कदम है, बल्कि साहसिक भी है। इससे देश के अन्दर चल रहा नकदी का अवैध कारोबार एक झटके में कागज के रद्दी टुकड़ों की तरह बेमतलब हो गया है। नक्सलियों के नेटवर्क को तगड़ा झटका लगा है। अलगाववादी ताकतें पस्त हो गयी हैं। राजनीति में धनबल वाले लोग निर्धन-निर्बल हो चुके हैं। रही बात कतारों की तो यह देश सत्तर वर्षों से कतार में ही था। गरीबी, असमानता, अर्थव्यवस्था से दूर एक कतार थी, जो आम लोगों की थी। आज उस कतार में आम और ख़ास हर कोई खड़ा है। इस कतार में वही चलेगा जो इमानदारी से धन कमाएगा। इस कतार में आने से वह लोग डर रहे हैं जो बेईमानी से पैसा कमाए हैं। यह इमानदारी के लिए इमानदारों की कतार है।

चैनल द्वारा दिखाए स्टिंग ओपरेशन को महज चंद कलाकारों तक सीमिति करके देखने की बजाय इसके बड़े खतरे को भी देखना होगा। आज अगर सरकार बेहद सख्त है तो वह इन्हीं बड़े खतरों से देश को बचाने के लिए सख्त है। सरकार कोई ऐसा रास्ता नहीं छोड़ना चाहती जहाँ से कैश का काला व्यापार करने वाले लोग बच निकलें। इस मुहीम में देश की इमानदार जनता एक कतार में सरकार के साथ है और यह वह कतार है, जहाँ आने की हिम्मत कोई बेईमान कर ही नहीं सकता है।

(लेखक डॉ श्यामा प्रसाद मुखर्जी रिसर्च फाउंडेशन में रिसर्च फेलो और नेशनलिस्ट ऑनलाइन के संपादक हैं।)

गरीबों-मजदूरों के लिए लाभकारी है नोटबंदी

अनंत विजय

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने नोटबंदी के फैसले को लागू करके बड़ा रिस्क लिया है जो अगर वो नहीं भी लेते तो कोई फर्क नहीं पड़ता और उनकी राजनीति निर्बाध गति से चलती रहती। नोटबंदी के पहले हो रहे तमाम सर्वे के नतीजे यह बता रहे थे कि मोदी सबसे लोकप्रिय नेता हैं। बावजूद ये जोखिम उठाना इस बात का संकेत देता है कि नरेन्द्र मोदी देश के लिए कुछ बड़ा करने की दिशा में कदम उठा चुके हैं। हलांकि राज्यसभा में नोटबंदी पर चर्चा में हस्तक्षेप करते हुए पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने कहा कि सरकार के इस कदम से जीडीपी पर निगेटिव असर पड़ेगा। उनके अनुमान के मुताबिक नोटबंदी से इसमें दो फीसदी की गिरावट दर्ज की जा सकती है। दरअसल इस पूरे मसले पर विपक्ष को विरोध की जमीन ही समझ में नहीं आ रही है। पहले किसानों को लेकर सरकार पर हमले लेकिन नबार्ड की पहल से किसानों की मदद के लिए उठाए कदम ने विपक्ष के इन आरोपों को भी शांत कर दिया। इसके पहले कुछ उलजलूल आरोप लगे कि प्रधानमंत्री ने अपने इस फैसले के पहले राजनीतिक लोगों से विमर्श नहीं किया और अफसरों की सलाह पर ये फैसला ले लिया। राज्यसभा में तो समाजवादी पार्टी के नेता नरेश अग्रवाल ने चुटकी लेते हुए प्रधानमंत्री की मौजूदगी में ये कह दिया कि वित्त मंत्री अरुण जेटली को भी इस फैसले की जानकारी नहीं थी। दरअसल इस तरह के फैसलों में जो गोपनीयता बरती जाती है, उसकी जानकारी विपक्षी नेताओं को शायद नहीं हो।

1991 में जब आर्थिक उदारीकरण का दौर शुरू हुआ था तब उस वक्त के वित्त मंत्री मनमोहन सिंह भारतीय मुद्रा का अवमूल्यन करना चाहते थे। इसके पहले इंदिरा गांधी ने 1966 में मुद्रा का अवमूल्यन किया था जो कि सत्तावन फीसदी से थोड़ा ज्यादा था। जब मनमोहन के मुद्रा अवमूल्यन के इरादे का पता चला तो वामपंथी बुद्धिजीवियों ने इसका विरोध शुरू किया लेकिन मनमोहन सिंह इस फैसले पर अडिग थे। उन्होंने उस वक्त के प्रधानमंत्री नरसिंह राव से मिलकर अनुरोध किया कि इस फैसले की जानकारी कैबिनेट के मंत्रियों को भी नहीं दी जाए। राव ने मनमोहन सिंह की सलाह मान ली। उस वक्त मनमोहन सिंह ने फैसला किया था कि मुद्रा का अवमूल्यन दो चरणों में किया जाएगा। 1 जुलाई 1991 को रुपए का अवमूल्यन कर दिया गया। विपक्ष समते तमाम वामपंथी बुद्धिजीवियों ने इसका विरोध किया। कांग्रेस के नेताओं को भी इस फैसले के बचाव में दिक्कत आ रही थी। सीपीएम ने उस वक्त इसको एक खतरनाक कदम बताया था। लेकिन असली कहानी तो तब हुई जब मनमोहन सिंह ने एक ही दिन बाद यानि तीन जुलाई को रुपए का और ज्यादा अवमूल्यन करने का फैसला लिया। दोनों मिलाकर ये बीस फीसदी तक पहुंच रहा था। जब राव तक ये बात पहुंची तो वो घबरा गए और उन्होंने मनमोहन सिंह से इसको रोकने का आदेश दिया। लेकिन तबतक देर हो चुकी थी। जब मनमोहन सिंह ने रिजर्व बैंक के डिप्टी गवर्नर सी रंगराजन को फोन कर इस आदेश का एलान रोकने के लिए कहा तो उनका जवाब आया कि वो तो इस फैसले को सार्वजनिक कर चुके हैं। मनमोहन सिंह सन्न। उन्होंने राव को ये बात बताई और फिर इस्तीफे की पेशकश की लेकिन राव ने अपने वित्त मंत्री का पक्ष लिया और उस फैसले के साथ हो लिए।

ये पूरा वाकया बताने का मतलब सिर्फ इतना है कि हमारे देश में इस तरह के क्रांतिकारी आर्थिक फैसले पहले भी गोपनीय तरीके लिए जाते रहे हैं। उसका उद्देश्य भी तभी पूरा होगा जबकि इसको गोपनीय रखा जाएगा। गोपनीयता बरते जाने की बिनाह पर किसी भी सरकार को घेरना उचित नहीं होता है। मौजूदा वित्त मंत्री अरुण जेटली ने भी इस बात को माना है कि इस फैसले की जानकारी नीड टू नो बेसिस पर उन सभी लोगों को थी, जिनको होनी चाहिए थी। प्रधानमंत्री मोदी ने तो चंद घंटे पहले अपने कैबिनेट को इस फैसले के बारे में बता भी दिया था। मनमोहन सिंह ने तो मुद्रा के अवमूल्यन के फैसले के बारे में किसी को नहीं बताया था और अपने प्रधानमंत्री के सामने ये चाहत भी रखी थी कि कैबिनेट को इस फैसले की जानकारी ना दी जाए। जिसको राव ने माना भी था।

अब अगर हम विपक्ष के तर्कों को देखें तो वो बचकाना नजर आते हैं। इस तरह की खबरें अवश्य आ रही हैं कि नोटबंदी से जनता को दिक्कत हो रही है, लेकिन जनता इन दिक्कतों को सहने के लिए तैयार है और अब धीरे-धीरे दिक्कतें कम हो रही हैं। अभी बिहार के दो शहरों के लोगों से बात हुई है तो वहां से ये जानकारी मिल रही है कि बैंकों में कतारें कम हो गई है। अब दूसरी बात ये उठाई जा रही है कि इससे अर्थव्यवस्था पर बुरा असर पड़ेगा। संभव है कि बड़े अर्थशास्त्रियों के अपने तर्क हों, लेकिन सरकार भी इस आसन्न खतरे से निबटने को लेकर सतर्क नजर आ रही है। जनवरी से मार्च की तिमाही में इसका असर विकास दर पर पड़ सकता है, लेकिन उसके अगली तिमाही से हालात बेहतर हो सकते हैं। अगर इस फैसले से नकदी से होनेवाला कारोबार बैंकों के माध्यम से होता है तो गरीबों का भी भला होगा। नकदी पर काम करनेवाले फैक्ट्री मजदूरों को मालिकों को पीएफ और ईएसाई का लाभ देना होगा। इससे मजदूरों को भविष्य के लिए जमा राशि भी मिलेगी और चिकित्सा सुविधा का भी लाभ होगा।

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार हैं। ये उनके निजी विचार हैं।)

चंडीगढ़ निकाय चुनाव : भाजपा की चली आंधी, जनता ने दिखाया विपक्षी दलों को आईना

पीयूष द्विवेदी

हाल ही में पंजाब की राजधानी चंडीगढ़ में निकाय चुनावों के परिणाम आये। इन चुनावों में जनता ने भाजपा को ऐतिहासिक रूप से विजयी बनाया है। चंडीगढ़ निकाय के कुल 26 वार्डों में से 22 वार्डों में भाजपा ने अपने उम्मीदवार उतारे थे, जिनमें से 20 में उसे जोरदार जीत हासिल हुई है। भाजपा की सहयोगी शिरोमणि अकाली दल को सिर्फ एक सीट हाथ लगी, वहीँ पिछली बार के चुनावों में ११ सीटें जीतने वाली कांग्रेस को महज़ चार सीटों से संतोष करना पड़ा। इससे पहले महाराष्ट्र और गुजरात के निकाय चुनावों में भी भाजपा ने बड़ी जीतें हासिल की थी, लेकिन, चंडीगढ़ निकाय चुनावों की ये जीत उन सबसे भी अधिक शानदार रही है। साथ ही, इन सब निकाय चुनावों से पहले मध्य प्रदेश, असम, अरुणाचल प्रदेश आदि राज्यों में खाली हुई लोकसभा और विधानसभा सीटों पर भी उपचुनाव हुए थे, उनमें भी ज्यादातर सीटों पर भाजपा को जनता ने विजयी बनाया था।

यह दिया जा रहा है कि निकाय चुनाव राष्ट्रीय मुद्दों पर नहीं होते, इसलिये उनमें नोटबंदी कोई मुद्दा ही नहीं था। ये बात एक हद तक सही है कि निकाय चुनाव स्थानीय मुद्दों पर आधारित होते हैं, लेकिन नोटबंदी देशव्यापी मुद्दा है और इससे इन चुनावसंपन्न निकायों की जनता भी प्रभावित हुई है। अब अगर उस जनता के मन में नोटबंदी के प्रति जरा-सा भी आक्रोश होता या इस निर्णय को वो गलत मानती तो हाल के सभी निकाय चुनावों में भाजपा को बम्पर रूप से विजयी बनाने का काम क्यों करती ? अगर जनता को लगता कि नोटबंदी पर विपक्ष का विरोध तार्किक और उचित है, तो वो विपक्षी दलों को इन निकायों में तवज्जों क्यों नहीं देती ? सीधा निष्कर्ष है कि इन चुनावों में नोटबंदी मुद्दा रहा है और कहीं न कहीं भाजपा की बम्पर जीत को सुनिश्चित करने में इसका महत्वपूर्ण योगदान भी रहा है।

इन सब चुनावों की सबसे विशेष बात ये रही है कि यह सब नोटबंदी के उस निर्णय के बाद हुए है, जिसके विरोध में पूरा का पूरा विपक्षी खेमा एक सुर में लामबंद हुआ पड़ा है और जिसके विरोध के नाम पर विपक्षी खेमे ने संसद के शीतकालीन सत्र को अपने हंगामें की भेंट चढ़ा दिया। अब इन चुनाव परिणामों के बाद विपक्ष के विरोध की कलई भी पूरी तरह से खुल चुकी है कि नोटबंदी के कारण जनता की जिस कथित पीड़ा और आक्रोश का गान करते हुए ये भाजपा सरकार को बिना मतलब ही भरपूर कोस रहे हैं, वो जनता हर स्तर पर चुनाव में इन्हें लगातार खारिज़ और सत्ताधारी दल को स्वीकार रही है। इसका एक अर्थ यह भी है कि जनता नोटबंदी के निर्णय से बिलकुल भी नाराज़ नहीं है, बल्कि इसका बेमतलब विरोध करने वालों से उसे अधिक नाराजगी हो रही है।

अब तर्क यह दिया जा रहा है कि निकाय चुनाव राष्ट्रीय मुद्दों पर नहीं होते, इसलिये उनमें नोटबंदी कोई मुद्दा ही नहीं था। ये बात एक हद तक सही है कि निकाय चुनाव स्थानीय मुद्दों पर आधारित होते हैं, लेकिन नोटबंदी देशव्यापी मुद्दा है और इससे इन चुनावसंपन्न निकायों की जनता भी प्रभावित हुई है। अब अगर उस जनता के मन में नोटबंदी के प्रति जरा-सा भी आक्रोश होता या इस निर्णय को वो गलत मानती तो हाल के सभी निकाय चुनावों में भाजपा को बम्पर रूप से विजयी बनाने का काम क्यों करती ? अगर जनता को लगता कि नोटबंदी पर विपक्ष का विरोध तार्किक और उचित है, तो वो विपक्षी दलों को इन निकायों में तवज्जों क्यों नहीं देती? सीधा निष्कर्ष है कि इन चुनावों में नोटबंदी मुद्दा रहा है और कहीं न कहीं भाजपा की बम्पर जीत को सुनिश्चित करने में इसका महत्वपूर्ण योगदान भी रहा है। इन सबके बाद, एक बार के लिये अगर मान लें कि इन निकाय चुनावों में नोटबंदी कोई मुद्दा नहीं रहा, तो भी विपक्ष की जो दुर्दशा इनमें हुई है, वो क्या कम हो जाती है। अच्छी बात होगी कि विपक्षी खेमा अब भी वास्तविकता को समझे कि सरकार के प्रति अंधविरोधी रुख और जनता की नब्ज़ को पकड़ पाने में उसकी नाकामयाबी के कारण उसका जनाधार अब धीरे-धीरे समाप्त होता जा रहा है। यह विपक्ष के लिये चेतने का समय है।

(लेखक स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं। ये उनके निजी विचार।)

चार दशकों के राजनीतिक सफर में हर अवसर पर विफल रहे हैं मनमोहन सिंह

शिवानन्द द्विवेदी

एक पत्रकार वार्ता (जनवरी 2014) में डॉ मनमोहन सिंह ने कहा था कि मेरा मूल्यांकन इतिहास करेगा। इसमें कोई शक नहीं कि चार दशक तक किसी एक राजनीतिक दल के साथ पूरी वफादारी और राजनीतिक निष्ठा से सरकार में शीर्ष पदों पर काम करने वाले व्यक्ति का मूल्यांकन होना स्वाभाविक है। इसमें कोई शक नहीं कि स्वतंत्र भारत के इतिहास में डॉ मनमोहन सिंह उन चंद लोगों में से एक हैं, जिन्हें इतिहास ने सर्वाधिक अवसर दिया है। विमुद्रीकरण के मुद्दे पर जब डॉ मनमोहन सिंह राज्यसभा में केंद्र सरकार को घेरते हुए कांग्रेस का पक्ष रख रहे थे, तो मैं उनके भाषण को बहुत ध्यान से सुन रहा था। विमुद्रीकरण को लेकर उन्होंने एक वाक्य कहा, 'यह संगठित लूट है।' डॉ मनमोहन सिंह ने इसके तमाम नुकसान गिनवाए। उनके भाषण में कृषि की चिंता थी, जीडीपी की चिंता थी, ग्रामीण सहकारी बैंकों में होने वाली समस्याओं की चिंता थी, गरीबों की चिंता थी और दूरगामी परिणामों में लगने वाले वक्त की चिंता थी। साथ ही उन्होंने कुछ रचनात्मक प्रस्ताव के साथ आने की सलाह देते हुए सरकार की आलोचना भी की।

डॉ मनमोहन सिंह आज उस मुकाम पर हैं कि जब वो सदन में बोल रहे थे तो यह समझना मुश्किल था कि राज्यसभा के फ्लोर से एक पूर्व आर्थिक सलाहकार बोल रहा है या एक रिजर्व बैंक का पूर्व गवर्नर बोल रहा है! यह समझ पाना बिलकुल आसान नहीं था कि देश की जनता एक पूर्व वित्त सचिव को सुन रही है अथवा पूर्व वित्त मंत्री को सुन रही है! एक आम भ्रम लोगों में मन में जरुर बैठा होगा कि वे एक पूर्व प्रधानमंत्री को सुन रहे हैं अथवा एक कांग्रेस के सांसद को सुन रहे हैं? लोग तो यह भी जानना चाहते होंगे कि राज्यसभा से किसी पार्टी का एक राजनेता बोल रहा है अथवा एक अर्थशास्त्री बोल रहा है! वो क्या-क्या रहे हैं, किस-किस भूमिका में रहे हैं, वर्तमान में वो क्या हैं और किस भूमिका में हैं, उनका दायित्व क्या है और उनकी जवाबदेही क्या है, इन सवालों से उनके समर्थक चिढ़ते नजर आते हैं। डॉ मनमोहन सिंह का मूल्यांकन करने से पहले उनके सार्वजनिक दायित्वों पर एक संक्षिप्त नजर अवश्य डालनी चाहिए।

एक व्यक्ति जो देश की आर्थिक व्यवस्था में चार दशकों तक निर्णायक एवं शीर्ष पदों पर रहा है, उसे भी 2014 में आकर एक ढाई साल पहले निर्वाचित हुए प्रधानमंत्री से 'आर्थिक अव्यवस्था' की शिकायत करनी पड़ रही है! जब डॉ मनमोहन सिंह प्रधानमंत्री मोदी से ग्रामीण एवं सहकारी बैंकों की स्थिति पर शिकायत कर रहे थे, ऐसा लग रहा था कि मानो खुद की चार दशकों की विफलता की शिकायत कर रहे हों। चार दशकों पहले बैंकों के राष्ट्रीयकरण के दौरान तत्कालीन सरकार में सलाहकार रहने वाले डॉ मनमोहन सिंह को खुद यह बताना चाहिए कि आखिर वो किन नीतियों के आधार पर तत्कालीन सरकार को सलाह दे रहे थे अथवा खुद काम कर रहे थे कि वर्ष 2014 तक इस देश के ग्रामीण क्षत्रों में बैंकों की पहुँच दुरुस्त नहीं हो सकी और आज भी उन्हें शिकायत करनी पड़ रही है?

भारत सरकार की वेबसाईट (pmindia|gov|in) पर दिए परिचय को अगर सही माने तो वर्ष 1957 में अर्थशास्त्र में परास्नातक की डिग्री लेने वाले डॉ मनमोहन सिंह ऑक्सफ़ोर्ड विवि के नुफिल्ड कॉलेज से डी. फिल हैं। अपने करियर की शुरुआत एक शिक्षक के रूप में करने वाले डॉ मनमोहन सिंह 1971 में वाणिज्य मंत्रालय में आर्थिक सलाहकार की भूमिका में आए। महज एक साल में उनको वित्त मंत्रालय में मुख्य आर्थिक सलाहकार का दायित्व मिल गया। तब देश इंदिरा गांधी की सरकार थी। जब डॉ मनमोहन सिंह वित्त मंत्रालय में मुख्य आर्थिक सलाहकार थे तब प्रणब मुखर्जी भारत सरकार में मंत्री बन चुके थे। यही वो दौर था जब बैंकों का राष्ट्रीयकरण हो रहा था। इस दौरान डॉ मनमोहन सिंह वित्त मंत्रालय के सचिव, योजना आयोग के उपाध्यक्ष और रिजर्व बैंक के मुखिया भी रहे। रिजर्व बैंक का गवर्नर तो संभवत: उन्हें वित्त मंत्री रहते प्रणब मुखर्जी ने ही बनाया था। उनके दायित्वों से यह अंदाजा लगता है आर्थिक मामलों में डॉ मनमोहन सिंह इंदिरा गांधी के अति विश्वासपात्र अथवा वफादार लोगों में से थे। 1991-96 में डॉ मनमोहन सिंह देश के वित्तमंत्री बने। हालांकि, कहा जाता है कि वित्तमंत्री के तौर डॉ मनमोहन सिंह तत्कालीन प्रधानमंत्री पीवी नरसिम्हा राव की पहली पसंद नहीं थे। फिर 2004 में संप्रग-1 में प्रधानमंत्री बने और दस साल तक देश के प्रधानमंत्री रहे।

यहाँ परिचय देने का मकसद यह था कि एक व्यक्ति जो देश की आर्थिक व्यवस्था में चार दशकों तक निर्णायक एवं शीर्ष पदों पर रहा है, उसे भी 2014 में आकर एक ढाई साल पहले निर्वाचित हुए प्रधानमंत्री से 'आर्थिक अव्यवस्था' की शिकायत करनी पड़ रही है! जब डॉ मनमोहन सिंह प्रधानमंत्री मोदी से ग्रामीण एवं सहकारी बैंकों की स्थिति पर शिकायत कर रहे थे, ऐसा लग रहा था कि मानो खुद की चार दशकों की विफलता की शिकायत कर रहे हों। चार दशकों पहले बैंकों के राष्ट्रीयकरण के दौरान तत्कालीन सरकार में सलाहकार रहने वाले डॉ मनमोहन सिंह को खुद यह बताना चाहिए कि आखिर वो किन नीतियों के आधार पर तत्कालीन सरकार को सलाह दे रहे थे अथवा खुद काम कर रहे थे कि वर्ष 2014 तक इस देश के ग्रामीण क्षत्रों में बैंकों की पहुँच दुरुस्त नहीं हो सकी और आज भी उन्हें शिकायत करनी पड़ रही है?

वर्ष 2014 तक देश के 42 फीसद से ज्यादा आबादी की पहुँच बैंक तक नहीं थी, यानि उनके पास बैंक खाते तक नहीं थे। आखिर डॉ मनमोहन सिंह आर्थिक सलाहकार से लगाए चार दशक तक अर्थव्यवस्था से जुड़े

महत्वपूर्ण पदों पर लगातार रहते हुए प्रधानमंत्री तक के ताकतवर पद तक पहुँचने के बावजूद क्यों ये नहीं पूरा कर पाए? बैंकों के राष्ट्रीयकरण के दौरान ही सरकार में आर्थिक सलाहकार के तौर पर जुड़ने वाले डॉ मनमोहन सिंह की विफलता की कहानी यही है कि चार दशक बाद 2004 में प्रधानमंत्री बनने के बावजूद वो इस देश की आम जनता को मुख्यधारा की बैंकिंग अर्थव्यवस्था से जोड़ पाने में नाकाम साबित हुए। राज्यसभा में बोलते हुए डॉ मनमोहन सिंह ने जीडीपी विकास दर में 2 फीसद की गिरावट का अंदेशा जताया, लेकिन जीडीपी विकास दर के सवाल पर वो यह बताना क्यों नहीं मुनासिब समझे कि उनके दस साल के कार्यकाल में जीडीपी लगातार किन वजहों से अस्थिर रही थी?

अटल विहारी वाजपेयी की सरकार के दौरान देश की जीडीपी विकास दर लगभग 8।4 फीसद तक पहुँच गई थी। अटल विहारी वाजपेयी की सरकार के बाद डॉ मनमोहन सिंह की तत्कालीन गठित सरकार को जीडीपी दर विरासत से ठीक-ठाक मिली लेकिन डॉ मनमोहन सिंह के नेतृत्व में दस साल सरकार चलने के बाद जब वर्ष 2014 में एकबार फिर भाजपा-नीत सरकार नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में बनी तो डॉ मनमोहन सिंह से मोदी को 4।74 (2013 की जीडीपी विकास दर) फीसद जीडीपी विकास दर मिली। आज भारत की विकास दर 7।3 फीसद के आसपास है, लेकिन मनमोहन सिंह जीडीपी को लेकर बेहद चिंतित नजर आ रहे हैं! यह चिंता हास्यास्पद, बेवजह एवं निराशाजनक है। जब जीडीपी पर बात चल रही हो तो सवाल मोदी से नहीं डॉ मनमोहन सिंह से होना चाहिए कि आज जिस जीडीपी का आप हिसाब और आकलन कर रहे हैं, उसे आप ढाई साल पहले प्रधानमंत्री रहते छोड़कर किस हाल में गए थे?

कांग्रेस ने डॉ मनमोहन सिंह को सारी आलोचनाओं से परे साबित करने की अनेक कोशिशें की है। देश इस भ्रम में नहीं रहने वाला कि डॉ मनमोहन सिंह का मूल्यांकन एक अर्थशास्त्री के तौर पर करे अथवा एक प्रशासक प्रधानमंत्री के तौर पर। चूँकि दोनों ही मोर्चों पर जब-जब डॉ मनमोहन सिंह को ताकतवर पद मिला है, वे नाकाम साबित हुए हैं। बतौर प्रधानमंत्री उन्होंने एक भ्रष्ट और लूटतंत्र वाली सरकार दी है जिसके मंत्रियों को लूट एवं भ्रष्टाचार के गंभीर आरोपों में जेल तक जाना पड़ा है। डॉ मनमोहन सिंह एक बेहद कमजोर प्रशासक इसलिए भी हैं कि कोयला मंत्रालय उनके अंतर्गत रहते हुए उसी विभाग में हुए घोटालों को रोक पाने में वे बुरी तरह नाकाम साबित हुए। आज राज्यसभा से जब वे 'संगठित लूट' का जूमला फेंक रहे थे तो यह इतिहास उन्हीं को आईना दिखा रहा था। एक और बिंदु है, जिसको लेकर कांग्रेस उनका महिमा मंडन करती है। भारत में उदारीकरण के जनक के रूप में जिस ढंग से डॉ मनमोहन सिंह की छवि को कांग्रेस पेश करती है, वो महज एक छलावा है। उदारीकरण को लेकर हमें यह समझना होगा कि बतौर राजनीतिक दल कांग्रेस अथवा बतौर अर्थशास्त्री डॉ मनमोहन सिंह में से कोई भी कभी उदारीकरण का हिमायती नहीं रहा है।

उदारीकरण न तो कांग्रेस की नीति रही है और न ही डॉ मनमोहन सिंह का कभी विजन रहा है। भारत में उदारीकरण आर्थिक तंगी की मज़बूरी की देन से ज्यादा कुछ भी नहीं है। आपके पास जब कुछ नहीं बचा तो आप मज़बूरी में उदारीकरण को स्वीकार किए जबकि इसके पहले कांग्रेस की आर्थिक नीतियों में समाजवादी व्यवस्था की प्रबलता थी। पंडित दीन दयाल उपाध्याय अनेक बार सार्वजनिक क्षेत्रों के विस्तार पर कांग्रेस की सरकारों की आलोचना करते रहे थे। अब मज़बूरी में आए उदारीकरण को मनमोहन सिंह की आर्थिक दूरदृष्टि के रूप में पेश करके कांग्रेस देश को गुमराह नहीं कर सकती। उदारीकरण देश में उत्पन्न विकट परिस्थितियों की देन थी, न कि मनमोहन सिंह के आर्थिक विजन की। डॉ मनमोहन सिंह का मूल्यांकन जब इतिहास करेगा तो दो बातें निकल कर आएँगी। पहली बात कि चार दशक से ज्यादा एक ख़ास राजनीतिक पृष्ठिभूमि में लगातार महत्वपूर्ण एवं निर्णायक पदों पर रहने वाले भारत के चंद लोगों में से एक डॉ मनमोहन सिंह हैं। दूसरी बात यह निकल कर आएगी कि डॉ मनमोहन सिंह अवसरों के नायक रहे हैं। इनकी न अपनी कोई नीति रही है, न निर्णय रहा है और न ही ये किसी बदलाव के मौलिक निर्माता रहे हैं।

(लेखक डॉ श्यामा प्रसाद मुखर्जी रिसर्च फाउंडेशन में रिसर्च फेलो और नेशनलिस्ट ऑनलाइन डॉट कॉम के संपादक हैं।)

नकदी के जाल से निकलकर डिजिटल अर्थव्यवस्था की तरफ बढ़ने का समय

आयुष आनंद

लेखक अमिष त्रिपाठी की तीन खण्डों में शिव की एक काल्पनिक कहानी है, जो सोमरस नामक अमरता देने वाले द्रव्य की कथा है। यह एक अमृत था, परन्तु इस अमृत के दुष्प्रभाव भी थे, जिसको वहां के राजा दक्ष प्रजा से छुपा रहे थे। जिस तरह समुद्र मंथन में अमृत के साथ विष भी निकला, उसी तरह इस अमृत की निर्माण प्रक्रिया में इसके साथ-साथ विष भी बनता था। इस कहानी में जो सबसे महत्वपूर्ण है, वो यह कि शुरुआत में जो चीज समाज के लिए अमृत थी, वही इसके ज्यादा उपयोग से धीरे धीरे स्वतः विष में परिवर्तित हो गयी। तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में हर समस्या का मूल बन गयी। और चूँकि, इस सोमरस के प्रति स्वार्थ इतना गहरा हो चुका था कि बिना इसे प्रतिबंधित किये कोई उपाय नहीं रहा। धर्म युद्ध हुआ और इस विद्या को उपन्यास के अंत में हमेशा के लिए कुछ अपवादों को छोड़कर ख़त्म कर दिया गया।

अब इस कहानी को हम वर्तमान अर्थव्यवस्था के परिपेक्ष्य में देखते हैं, तो क्या नकद हमारी अर्थव्यवस्था का सोमरस है ? क्या सोमरस की तरह नकद भी धीरे-धीरे किसी व्यवस्था के लिए अभिशाप बन सकती है ? क्या नकद अपने सारे फायदे के बावजूद इतना जहरीला हो सकता है कि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था खोखली होने लगे ? इन सारे प्रश्नों के मूल में अगर हम इस व्यवस्था के इतिहास में जाएँ तो पाएंगे कि भौतिक मुद्रा एक बहुत ही पुरानी एवं मध्यकालीन परंपरा है व समय के साथ-साथ इस फिजिकल करेंसी के साथ-साथ अनेक विष-बेल लिपट चुके हैं।

भौतिक मुद्रा के साथ जो सबसे बड़ी समस्या आज पेश आ रही है, वो है इसके प्रति आशक्ति तथा कर चोरी हेतु सरकार की नज़र से इसे छुपा कर रखना। इस कारण अर्थव्यवस्था में उन छिपे हुए नोटों का क़ानूनी हस्तान्तरण में प्रयोग बंद हो जाता है और ये धन जैसे सरकार की नज़रों से गायब हो जाते हैं। उस धन का प्रयोग होता है, पर वहाँ जिस धंधे को सरकार या समाज गैर क़ानूनी मानते हैं और ये छुपा हुआ धन अपनी एक खुद की अर्थव्यवस्था बना लेती है जिसका विकास स्वतः होने लगता है। यह सामानांतर अर्थव्यवस्था नकद पर निर्भर हो जाती है, जहाँ न कोई टैक्स देना होता है, न ही समाज के प्रति किसी उत्तरदायित्व को निभाना होता है।

आज हमारे समाज में जितनी भी विसंगतियाँ दिखाई देंगी, उनके जड़ में यही काला धन है, जो कि कुछ नहीं, बल्कि सरकार की नज़र से छुपाकर लिया गया नकद है या उसके द्वारा खरीदी गयी परिसंपत्तियाँ हैं। इसी कालेधन रूपी नकद की जड़ से समस्त बुराइयों को खुराक मिलती है या उनकी अर्थव्यवस्था चलायमान रहती है। चाहे वो नशीली दवाओं का कारोबार हो, आतंकवाद की फंडिंग हो, हवाला कारोबार हो, चुनावों में लग रहा धनबल हो, चाइल्ड ट्रेफिकिंग हो या अन्य अपराध हों या उन्हें करवाने के लिए किया जा रहा जाली नोटों का इस्तेमाल हो, इन सबकी बुनियाद इसी नकदी पर टिकी होती है।

कामरेड सीताराम येचुरी ने अपने फेसबुक पोस्ट में लिखा है कि यह काला धन भारत की अर्थव्यवस्था का 06% है एवं इसका लगभग 0.025% नकली नोट हैं। अब अगर हम भारत की विशाल अर्थव्यवस्था को देखें तो ये रकम बहुत ज्यादा है। ये वही सोमरस है जो अब विष बन चुका है एवं जिसका उपयोग हमारे समाज को निरंतर कमजोर कर रहा है। इस विषबेल को काटने का कोई भी साहसी फैसला मुश्किल हो सकता है, परन्तु गलत कभी नहीं। इस नकद के लोभ में हर व्यक्ति भूल चुका है कि लक्ष्मी चंचला है, ये जब तक एक हाथ से दुसरे हाथ जाती रहती है, तभी तक आर्थिक विकास होता है एवं इसी विकास का एक हिस्सा कर के रूप में समाज व्यवस्था को जाता है।

वर्तमान सरकार के 500 एवं 1000 के बड़े नोटों जो कि बाज़ार में उपलब्ध नकद का 86% हैं, को वापस लेने के फैसले ने उन सारे नोटों को अपने मूल्य को बरक़रार रखने हेतु बैंकों में आने को विवश कर दिया है। अब चाहे काला हो या उजला अपने वजूद के लिए उन्हें सरकार की नज़र में आना ही होगा, वरना उस मूल्य के छपे नोट को सरकार स्वतः उपयोग में ला लेगी। बहुत से प्रश्न उठ रहे हैं कि क्या नए नोट से फिर से काला धन नहीं बनेगा ? दरअसल सरकार ने काले धन के निर्माण व प्रवाह को रोकने के लिए पहले से ही कई कदम उठाए हैं और अब जब यह निर्णय लिया गया है तो इसके बाद फिर नया काला धन न पनपे इसके लिए सरकार निश्चित तौर पर कुछ न कुछ तैयारी करके ही चल रही होगी।

बहरहाल, एक बात तो निश्चित है कि सरकार का यह कदम अब तक संग्रहित विषबेल रूपी नोटों को तो व्यर्थ कर ही देगा, जब तक कि वे एकबार वापस सरकार की आँखों से न गुजरें। और सरकार की नज़र हर उस व्यक्ति पर होगी जो यह काम कर रहा है। आय के ज्ञात स्रोतों से ज्यादा लोग जमा करने से बचेंगे, जिस भी किसी खाते में असामान्य गतिविधि होगी, वो पकड़ में आ जायेंगे। अब यह सर्वविदित है कि कैश व्यवस्था पुरातन एवं समाज की बदली आवश्यकताओं को पूर्ण करने में अक्षम हो चुकी है।

अब बड़े लेनदेन कैश में करना न सुविधाजनक है, न ही फायदेमंद। तो अब समय आ गया है कि हम इस कैश के जाल में फँसी अर्थव्यवस्था को यहाँ से बाहर निकालें। यह बिलकुल ही मुफीद समय है, जब हम राज्य के मौद्रिक वचन को नोट के रूप में मानने के बजाये डिजिटल एवं प्लास्टिक वचन को ज्यादा वजन दें। ये न केवल युगानुकुल है, बल्कि सुलभ सस्ता एवं कैश के साइड इफ़ेक्ट से बिलकुल मुक्त है। किसी भी विकास कर रही अर्थव्यवस्था को अन्ततोगत्वा जाना वहीँ है। हम भारत में कुल वित्तीय लेनदेन का लगभग 60% नकद में करते हैं, जिसे हमें घटा कर 20% के नीचे लाना होगा, अगर हम अपनी अर्थव्यवस्था अन्य राष्ट्रों की तुलना में साफ़ सुथरी एवं मजबूत बनाना चाहते हैं। अच्छी बात ये है कि सरकार के प्रयास इसी दिशा में होते दिख रहे हैं।

आज वर्तमान समाज व्यवस्था में सूचना क्रांति के कारण राज्य की मौद्रिक प्रतिज्ञा अब केवल नोटों तक सीमित नहीं है, यह एक आंकड़ों का खेल है कि आपके खाते में कितना धन है और वो व्यक्ति के इच्छानुसार हस्तान्तरणीय हो गयी है, तो अब बिना मुद्रा के मूर्त रूप के भी मुद्रा वजूद में है एवं क्रयशील तथा अर्थव्यवस्था को चलाने में सक्षम है। तो क्यों न हम इस व्यवस्था की ओर बढ़ें। आज जब लगभग हर व्यक्ति मोबाइल उपयोग कर रहा है, डेबिट कार्ड सुलभ हो चुका है, छुट्टे पैसे अब सभी एटीएम से ही निकाल रहे हैं तो क्यों न उस व्यवस्था को आगे बढ़ाया जाय। अगर आप किसी भी दुकानदार को पैसे ऑनलाइन ट्रान्सफर या कार्ड से करते हैं, तो वो टैक्स बिलकुल भी चोरी नहीं कर सकता। आपका कोई भी पेमेंट अगर कैश है तो संभावना है की वो ब्लैक बन जाये पर अगर यह बैंक टू बैंक, अकाउंट टू अकाउंट है तो यह हमेशा सफ़ेद ही रहेगा। तो आइये, ये बिलकुल सही समय है जब हम नए नोटों की बजाय बिना नोटों की साफ़-सुथरी अर्थव्यवस्था को बढ़ावा दें तथा जो इस से अछूते हैं, उन्हें भी डिजिटल अर्थव्यवस्था का अंग बनायें। हम इसके लिए अग्रशील होना बिलकुल भी नहीं छोड़ सकते कि पीछे वाले बहुत पीछे हैं, जरुरत है उन्हें भी इस व्यवस्था के अनुकूल, संवेदनशील तथा जागरूक बनाने की।

(लेखक नेशनलिस्ट ऑनलाइन में कॉपी एडिटर हैं।)

निकाय चुनाव: नोटबंदी के निर्णय पर जनता की मुहर

शिवानन्द द्विवेदी

8 नवंबर को रात आठ बजे राष्ट्र के नाम संदेश में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने पांच सौ और एक हजार के नोट बंद होने का फैसला सुनाकर सबको चौंका दिया था। इस बात को अब बीस दिन से ज्यादा हो गए हैं लेकिन आज भी यह विमर्श का सबसे बड़ा मुद्दा बना हुआ है। हालांकि विमुद्रीकरण के फैसले के बाद से ही इसके पक्ष-विपक्ष में बहस शुरू हो गयी, जो अब भी चल रही है। ममता बनर्जी की तृणमूल कांग्रेस, केजरीवाल की आम आदमी पार्टी, मायावती की बहुजन समाज पार्टी एवं भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस सहित तमाम राजनीतिक दलों ने इसके खिलाफ मोर्चा खोल दिया है। देश की जनता बैंक की कतार में है और देश के विपक्षी दल फैसले के विरोध में। सरकार के सामने बैंक की कतारों से निपटने की चुनौती तो थी ही, साथ में विरोधी दलों के असहयोगात्मक रुख से निपटने की चुनौती भी बनी है। चूँकि संसद का सत्र भी शुरू हो गया है लिहाजा नितीश कुमार को छोड़कर लगभग पूरा विपक्ष संसद से सड़क तक इस फैसले के विरोध में आ गया है। सरकार का शुरू से दावा रहा कि देश की आम जनता उनके इस फैसले के साथ है। वहीँ विरोध कर रहे दलों का तर्क था कि वो जनता की परेशानियों को देखते हुए अपना विरोध दर्ज करा रहे हैं। हालांकि सत्ता पक्ष और विपक्ष दोनों ही जनता को अपने पाले में बताने का दावा जब कर रहे हों तो यह समझ पाना बड़ा मुश्किल हो जाता है कि वाकई जनता किसके साथ है! इस मामले में भी ऐसा ही हुआ। अलग-अलग माध्यमों से सर्वे आदि शुरू हो गए। मीडिया चैनलों के लोकल स्तर के लाइव चर्चा आदि से भी इस फैसले पर जनता का मिजाज टटोलने की कवायदें तेज होने लगीं। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने अपने स्तर पर भी एक ऑनलाइन सर्वे कराया, जिसमे उनको इस फैसले पर भारी समर्थन मिला। हालांकि विरोध कर रहे कुछ दलों को इस बात का भान जरुर हुआ कि जनता इस मुद्दे पर उनके साथ नहीं है लिहाजा उन्होंने 28 नवंबर को 'भारत बंद' करने का अपना निर्णय वापस ले लिया। इसी बीच एक अंग्रेजी समाचार पत्र का सर्वे आया जिसमे बहुमत को सरकार के इस फैसले के खिलाफ बताया गया। अब बड़ा सवाल यह था कि क्या सच माने या क्या झूठ माने ?

लोकतंत्र में किसी भी राजनीतिक दल की जनता के बीच हैसियत मापने का सबसे व्यापक और सबसे बड़ा सर्वे चुनाव ही होता है। विमुद्रीकरण के मुद्दे पर जब देश में 'हाँ-ना' की बहस चल रही थी, इस दरम्यान तीन महत्वपूर्ण चुनाव संपन्न हुए। पहला, लोकसभा और विधानसभा की खाली हुई सीटों पर उपचुनाव, दूसरा महाराष्ट्र के निकायों के चुनाव और तीसरा गुजरात के स्थानीय निकायों के चुनाव। यह तीनों चुनाव विमुद्रीकरण के फैसले के बाद हुए। मतसंख्या के आधार पर अगर देखें तो किसी भी बड़े-बड़े सर्वे में जितना सेम्पल लिया जाता है, उससे सैकड़ों-हजारों गुना ज्यादा लोग इन चुनावों में प्रत्यक्ष हिस्सा लिए हैं। लोकसभा और विधानसभा के उपचुनावों में भाजपा अपनी सभी सीटें न सिर्फ सुरक्षित रखने में कामयाब हुई बल्कि त्रिपुरा और पश्चिम बंगाल में पिछले चुनाव की तुलना में भाजपा के वोट प्रतिशत में भारी इजाफा भी हुआ। इसके बाद 28 नवंबर को महाराष्ट्र के निकाय चुनावों के परिणाम आए जिसमे भाजपा को भारी बढ़त मिली है। चूँकि, वर्ष 2011 के चुनाव में भाजपा निकायों में तीसरे नम्बर की पार्टी होती थी, लेकिन इन परिणामों के बाद भाजपा सबसे बड़ी पार्टी बनकर उभरी है। यहाँ तक कि शिवसेना के साथ गठबंधन होने के बावजूद भाजपा शिवसेना से ज्यादा सीटें जीत गयी है। नगर पंचायतों के लिए हुए चुनावों में भाजपा को 851 सीटें मिली हैं, जो 2011 में मात्र 396 थीं। कुल 147 सीटों पर हुए म्युनिसिपल काउंसिल के लिए प्रत्यक्ष मतदान में भाजपा को अकेले 52 सीटों पर जीत मिली है। पिछले चुनावों में इन निकायों पर राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी का कब्जा था, जो कि अब उसके हाथ से जा चुका है। इसके अलावा सोलापुर जैसे सीटों, जहाँ भाजपा कभी नहीं आई थी, पर भी इसबार भाजपा जीतने में कामयाब रही। महाराष्ट्र के स्थानीय चुनावों के परिणामों को इस लिहाज से भी महत्वपूर्ण माना जा रहा है क्योंकि तमाम दल एवं बुद्धिजीवी इसे मिनी विधानसभा चुनाव भी कहते हैं। यह अलग बात है कि भाजपा को मिली बड़ी जीत के बाद इसपर हमारे तथाकथित बुद्धिजीवी वर्ग ने सन्नाटा साध लिया है और ऐसा जताना चाह रहे हैं कि ये चुनाव महत्वपूर्ण हैं ही नहीं। लेकिन वहीँ अगर परिणाम भाजपा के प्रतिकूल होते तो यही बुद्धिजीवी इसे देवेन्द्र फडनवीस नहीं बल्कि नरेंद्र मोदी की हार बताते हुए नहीं थकते।

\ खैर, विमुद्रीकरण के बाद नरेंद्र मोदी के अपने राज्य गुजरात में भी निकाय चुनाव हुए। गुजरात पर सबकी नजर इसलिए थी क्योंकि वहां हाल में ही सत्ता में उथल-पुथल के अलावा सरकार के खिलाफ पटेल आन्दोलन हुआ था। ऊना काण्ड के बाद दलितों के नाम पर माहौल बनाने की कोशिश देश के उन राजनीतिक दलों ने भी कम नहीं की जिनकी गुजरात में वर्तमान

की राजनीतिक हैसियत कुछ भी नहीं है। लेकिन गुजरात के चुनाव परिणामों ने तो कांग्रेस का सूपड़ा ही साफ़ कर दिया। परिणामों के मुताबिक़ गुजरात के वापी नगरपालिका की 44 सीटों में भाजपा ने 41 सीटों पर जीत दर्ज की है, वहीँ कांग्रेस को यहाँ महज 3 सीटों पर संतोष करना पड़ा है। सूरत के कनकपुर-कनसाड़ की 28 में से 27 सीटों पर भाजपा को जीत मिली है। वहीँ कुछ जिला, तालुका पंचायत के उपचुनावों में भाजपा को 23 और कांग्रेस को महज 8 सीटें मिली हैं। गुजरात पर सबकी नजर इसलिए भी बनी हुई थी क्योंकि गुजरात से नरेंद्र मोदी के आने के बाद वहां महज ढाई साल में एक मुख्यमंत्री को बदलना पड़ा था। इसी दरम्यान वहां पटेल आन्दोलन को भी दिल्ली की मोदी-विरोधी ताकतों के सहयोग से हवा देने का काम किया गया। ऊना में दलित पिटाई मामले के बाद भी दिल्ली की राजनीति के सियासतदानों की गिद्ध निगाहें गुजरात में लगी रहीं। लेकिन इन चुनावों को अगर जनता का सबसे बड़ा और सबसे विशुद्ध सर्वे माने तो यह सर्वे मोदी के पक्ष में जाता है। यह इसलिए ज्यादा महत्वपूर्ण है क्योंकि हाल में ही विपक्षी खेमा विमुद्रीकरण के मुद्दे पर जनता की परेशानियों का हवाला देकर असहयोग की स्थिति उत्पन्न कर रहा है।

इन चुनावों को जनता की बीच से आया आम सर्वे मानकर भी अगर विरोधी खेमा विमुद्रीकरण के बेजा विरोध से नहीं डिगा और जनता के कंधे पर बंदूक रखकर सरकार को घेरता रहा तो यह मोदी के लिए तो नहीं लेकिन उनके खुद के लिए ज्यादा घातक होगा। विरोध सकारात्मक होना चाहिए, वैचारिक होना चाहिए, न कि सिर्फ इसलिए विरोध करो क्योंकि आपको मोदी का विरोध करना है। इन चुनावों के परिणामों पर एक लाइन में टिप्पणी करें तो यही कहेंगे कि जनता ने मोदी के निर्णय पर अपनी सहमति का मुहर लगाया ही है, विरोधियों को आईना भी दिखा दिया है।

(लेखक डॉ श्यामा प्रसाद मुखर्जी रिसर्च फाउन्देशन में रिसर्च फेलो एवं नेशनलिस्ट ऑनलाइन डॉट कॉम में सम्पादक हैं।)

निकाय चुनावों में भाजपा की इस बम्पर जीत के बाद तो नोटबंदी के विरोध की राजनीति बंद करें विपक्षी!

केशव झा

वैसे तो हर चुनाव का मुद्दा और कलेवर अलग होता है। उसमे भी स्थानीय निकाय और नगर पंचायत चुनावों का मुद्दा पूर्णतया स्थानीय होता है। परंतु पिछले दिनों महाराष्ट्र और गुजरात मे निकाय चुनाव का आयोजन विमुद्रीकरण के साए में हुआ जहां पर अन्य स्थानीय मुद्दों के अलावा विमुद्रीकरण चुनाव में बड़ा मुद्दा था और हर पार्टी इस मुद्दे को भुनाने में लगी थी। इस चुनाव मे भाजपा ने भारी जीत दर्ज की जिसे प्रधानमंत्री मोदी द्वारा कलेधन के खिलाफ उठाए गए कदम पर जनता की मुहर माना जा सकता है। सभी विपक्षी पार्टियाँ विमुद्रीकरण के कारण जनता की परेशानी का हवाला देते हुए संसद के शीतकालीन सत्र को लगभग-लगभग हंगामे की भेंट चढ़ा चुकी हैं। वहीँ, जनता जनार्दन ने निकाय चुनावों में भाजपा की जीत दिलाकर इस फैसले पर मुहर लगाने का संदेश दिया है। विपक्षी पार्टियो की दलील थी कि ग्रामीण भारत सबसे ज्यादा विमुद्रीकरण की मार झेल रहा है, इसलिए वह विमुद्रीकरण का विरोध कर रहे हैं, लेकिन इन स्थानीय निकाय चुनावों मे जनता ने सत्तारूढ़ भाजपा के पक्ष मे अपनी मुहर लगाई है, जिसने नोटबंदी को लेकर सरकार से जनता की नाराजगी जैसी विपक्ष की सभी दलीलों की पोल खोल दी है। स्पष्ट हो गया कि नोटबंदी के बाद भाजपा के प्रति जनसमर्थन बढ़ा है। ऐसे में प्रतीत तो ये हो रहा कि विपक्षियों चिंता जनता की नहीं खुद के काले धन की है, जो कि नोटबंदी के बाद महज कागज बन कर रह गया। इसी क्रम में अगर इन चुनावों के परिणामों पर नजर दौड़ाएँ तो साफ-साफ पता चलता है कि जनता ने प्रधानमंत्री मोदी के साथ जाना पसंद किया है, जबकि विपक्षी पार्टियों के सारे आरोप और लामबंदी हवा हो गए।

गुजरात की दो नगरपालिकाओं के चुनावों में भाजपा ने एकतरफा जीत दर्ज की है। केंद्र और राज्य में सत्ताधारी पार्टी को वापी नगरपालिका चुनाव में 44 में से 41 सीटें मिली हैं, वहीं सूरत के कनकपुर- कनसाड़ नगरपालिका में 28 में से 27 सीटों पर विजय मिली। विपक्षी दल कांग्रेस को वापी में तीन और कनकपुर-कनसाड़ में महज एक सीट से संतोष करना पड़ा। वहीं जिला पंचायत, तालुका पंचायत और नगरपालिका उपचुनावों में भाजपा ने 23 और कांग्रेस ने आठ सीटें फतेह की। ज्ञात हो कि पिछले साल सम्पन्न हुए स्थानीय चुनाव मे कांग्रेस ने अपने प्रदर्शन मे कुछ सुधार किया था, जिसे उसने प्रधानमंत्री योजनाओं की हार के तौर पर प्रदर्शित किया था। लेकिन, अब इस निकाय चुनाव में जब कांग्रेस का सूपड़ा साफ़ हो गया तो उसके पास बोलने के लिए कुछ नहीं बचा है।

बीते दो दशक से सत्ता से बाहर कांग्रेस की स्थिति दिन-प्रतिदिन खराब होती जा रही है, परंतु वह है कि मानने को तैयार नहीं। गुजरात के अलावा महाराष्ट्र के स्थानीय चुनावों मे भी करारी हार का सामना करना पड़ा। महाराष्ट्र में 147 नगर परिषद में से अकेले भाजपा को 52 सीट, सहयोगी शिवसेना जो कि इस चुनाव में भी बागी तेवर अपनाए हुए थी, उसे भी महज़ 23 सीटें हाथ लगीं, कांग्रेस को 19 और एनसीपी को 16 पर जीत मिली है। अन्य उम्मीदवारों के खाते में 28 सीटें गई हैं। वहीं 17 नगर पंचायतों के 3510 सदस्यों के लिए हुए चुनाव में सत्ताधारी भाजपा को 851 सीटें मिली हैं। कांग्रेस के खाते में 643, एनसीपी को 638 और शिवसेना को 514, मनसे को 16, सीपीएम को 12, बसपा को 9, निर्दलीयों को 324, स्थानीय गठबंधनों को 384 और बाकियों को 119 सीटों पर जीत मिली है। स्पष्ट है कि यहाँ भी भाजपा हर तरह से सबसे आगे है।

इस जीत को भी विमुद्रीकरण के फैसले पर जनता की मुहर और राज्य के मुखिया देवेंद्र फडणविस के विकास प्रायोजित कामकाज पर जनता की सहमति कहना गलत नहीं होगा। इन सब चीजों से विपक्षी दल दरअसल बौखलाए हुए हैं, उन्हे कुछ सूझ नहीं रहा है कि वह करें तो क्या करें। अब इस पर विपक्षियों का तर्क ये है कि इन चुनावों में नोटबंदी कोई मुद्दा नहीं था। मसला हार-जीत का नहीं है, मसला है तो विपक्ष के दोमुंहे चरित्र का। जब विपक्ष का सफाया हो जाये तो मुद्दे स्थानीय थे, पर वहीं अगर सत्तारूढ़ पार्टी हार जाए तो उस पार्टी की हार है, उसके योजनाओं की हार है। देखने वाली बात यह है कि हर किसी को पता है कि स्थानीय निकाय के चुनावों में जीत के कारण अलग होते हैं, लेकिन जब हारने पर भाजपा के मत्थे नोटबंदी मढ़ दी जाती तो जीतने पर श्रेय क्यों नहीं ? और वैसे भी विमुद्रीकरण तो समग्र राष्ट्र को प्रभावित करने वाला मुद्दा है, फिर निश्चित तौर पर इन चुनावों में भी इसका प्रभाव रहा ही होगा। उल्लेखनीय होगा कि अभी नोटबंदी के बाद ही हुए एपीएमसी के चुनावों में भाजपा का प्रदर्शन बहुत अच्छा नहीं रहा था, तो उस वक्त इन विरोधी दलों ने कहा था कि नोटबंदी के कारण हार हुई है। जबकि अब निकाय चुनावों में इनके हिसाब से नोटबंदी कोई मुद्दा ही नहीं है। ये सिर्फ और सिर्फ इनके दोमुंहेपन को दिखाता है। कहना गलत नहीं होगा कि जितना तमाशा लोकतन्त्र का वर्तमान विपक्षी पार्टियां कर रहीं हैं, उसे देश कभी नहीं माफ करेगा। नोटबन्दी का विरोध विपक्ष द्वारा महज़ खुद को सक्रिय दिखाने की एक नाकाम और नकारात्मक कोशिश है, उससे ज्यादा कुछ नहीं। चुनाव के परिणाम बताते हैं कि प्रधानमंत्री मोदी दिन-प्रतिदिन मजबूत होते जा रहे हैं। यह भी तय मानिए कि जितना विरोध प्रधानमंत्री का होगा, उतना ही वह मजबूत होकर बाहर आएंगे।

(लेखक स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं।ये उनके निजी विचार हैं।)

खबरदार, यह ईमानदारों की कतार है, बेईमान दूर रहें!

शिवानन्द द्विवेदी

केंद्र सरकार द्वारा पांच सौ और एक हजार के नोट बंद करने के फैसले के बाद से ही मोदी-विरोधी एक राजनीतिक जमात में भूचाल की स्थिति है। इस साहसिक एवं ऐतिहासिक निर्णय के दूरगामी नफा-नुकसान पर बहस करने की बजाय कुछ राजनीतिक जमात के लोग बैंकों की कतारों पर बहस करना चाहते हैं। चूँकि, इस निर्णय को लेकर आम जनता के मन में एकतरफा समर्थन का भाव खुलकर दिख रहा है, लिहाजा कुछ राजनीतिक खेमों के लोग इसपर चर्चा करने से भागते नजर आ रहे हैं। देश का आम जन अपनी कुछ दिनों की परेशानियों को दरकिनार कर इस ऐतिहासिक निर्णय को स्वीकार कर चुका है। लेकिन, बड़ा सवाल यह है कि वो कौन लोग हैं जो इस निर्णय को स्वीकार करने से कतरा रहे हैं ? वो कौन लोग हैं जो इस निर्णय को वापस लेने के लिए असफल रैलियां कर रहे हैं ? वो कौन लोग हैं जो महंगी गाड़ियों और एसपीजी सुरक्षा में जाकर दो घंटे में अपना चार हजार रुपया निकालने के बावजूद झूठ बोल रहे हैं कि पैसा नहीं मिल रहा ? एक सवाल यह भी है कि ये लोग ऐसा क्यों कर रहे हैं ?

इस सवाल पर पड़ताल करने से पहले जरा ‘कतार’ पर बहस कर लें। राहुल गांधी अपना चार हजार तो दो घंटे में निकाल लिए लेकिन लोगों को गुमराह कर रहे हैं कि पैसा नहीं निकल रहा है। दरअसल यह उनकी नीयत में खोट को दर्शाता है। अगर वे ईमानदारी दिखाते तो सबके सामने स्वीकार करते कि “हाँ! मै कतार में लगा था और मुझे मेरा पैसा मिला! लेकिन नहीं, उनकी जबान तो कुछ और बोल रही है! दरअसल राहुल गांधी को यह बात बखूबी पता होनी चाहिए कि इस देश की आम जनता को ‘कतारों’ से कभी समस्या नहीं रही है। सत्तर साल की सरकारों, जिसमे लगभग साठ साल कांग्रेस ही सत्ता में रही है, ने इस देश की आम जनता को कतार में खड़े रहने की आदत डाल दी है। यह वही जनता है जो कभी सिलेंडर गैस तो कभी यूरिया तो कभी रेल टिकट के लिए आये दिन कतारों में नजर आती रही है। इसलिए इस जनता को अब कतारों का भय न दिखाइए। इस देश में सत्तर वर्षों में जो लंबी कतार आपने खड़ी की है, अब नोटबंदी के इस फैसले ने उस कतार को तोड़ दिया है। यह वह कतार बन रही है, जिसमें देश का आम जन खड़ा होकर बिना किसी डर के, भय के अपने हक़ के लिए और देश के भविष्य के निर्माण के लिए खड़ा होने को तैयार है। यह कतार ईमानदारों की कतार है। प्रधानमंत्री मोदी ने जो यह कतार बनाई है, इस कतार में किसी भ्रष्ट, बेईमान और चोरी से काली कमाई करने वाले की हिम्मत नहीं हो पा रही कि वो खुलकर खड़ा हो सके। लिहाजा यह ईमानदारी का उत्सव मना रहे देश की ईमानदार जनता की कतार है।

भ्रष्टाचार के खिलाफ चल रही इस लड़ाई का लगातार विरोध कर रहे दिल्ली के मुख्यमंत्री अरविन्द केजरीवाल की अपनी कोई विश्वसनीयता नहीं रही है। वे खुद कभी लालू यादव तो कभी किसी और के समर्थन में खड़े होकर अपनी साख पर बट्टा लगा चुके हैं। लेकिन, अब जब देश की आम जनता के साथ कालाधन और भ्रष्टाचार के खिलाफ चल रही इस निर्णायक लड़ाई का समय आया तो वे बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी के साथ मिलकर इसका विरोध करते नजर आ रहे हैं। वैसे तो बिना किसी सुबूत और बुनियाद के किसी पर भी आरोप लगाने के रोग से ग्रसित दिल्ली के मुख्यमंत्री अनेक बार सुबूत न दे पाने की वजह से अपनी फजीहत भी करा चुके हैं, लेकिन, आज एकबार फिर वे बिना किसी सुबूत के मनगढ़ंत बातें कर रहे हैं। दिल्ली की जनता के मन में यह सवाल बेजा नहीं उठ रहा है कि ममता बनर्जी और दिल्ली के मुख्यमंत्री के बीच किस मुद्दे पर सहमति बनी है ? ममता बनर्जी, मायावती सहित कुछ लोग पहले दिन से भ्रष्टाचार के खिलाफ इस निर्णायक लड़ाई में भ्रष्ट लोगों के साथ खड़े हैं। लेकिन दिल्ली के मुख्यमंत्री अरविन्द केजरीवाल आखिर क्यों इनके साथ खड़े हैं ? मोदी के इस फैसले से आतंकवादियों को फंडिंग करने वालों, माओवादियों को संसाधन मुहैया कराने वालों, तस्करों, अपराधियों, भ्रष्टाचार करने वालों की पीड़ा तो जायज है, लेकिन इन चंद नेताओं की इस फैसले के खिलाफ एकजुटता भी कम शक नहीं पैदा करती है ? ऐसे में बड़ा सवाल जनता के जेहन में है कि जब पंजाब में चुनाव होने हैं तो क्या आम आदमी पार्टी को चुनाव में इस्तेमाल करने के लिए जुटाए गए धन के रद्दी हो जाने की चिंता सता रही है ? यह सबको पता है कि पारदर्शिता की बात करने वाली आम आदमी पार्टी काफी समय से अपने आय और व्यय का ब्योरा सार्वजनिक नहीं कर रही है।

खैर, कतार लंबी जरुर है, लेकिन बंदोबस्त ऐसा है कि उस कतार में कोई बेईमान और भ्रष्ट ज्यादा देर टिक नहीं पाएगा। यह वो कतार है, जिसने देश की आम और ईमानदार जनता को बेईमानों के सामने गौरवान्वित होने का अवसर दिया है। यह वह कतार है जहाँ जाने भर से न जाने कितने बेईमान खौफ खा रहे हैं। नोटबंदी के खिलाफ उठने वाली हर आवाज इस देश में ईमानदारी की बन रही इस ऐतिहासिक कतार के खिलाफ एक साजिश की तरह है। आज या तो आप इस कतार के साथ हैं या आप भ्रष्ट और बेईमानी से धन अर्जित करने वालों के साथ हैं। वैसे भी मोदी की अच्छी बात यह है कि वो प्रमाणपत्र देने वालों की परवाह किए बिना, जनहित में दशकों से काम करते हुए यहाँ तक पहुंचे हैं। जिनका डूब रहा है, वे बौखला रहे हैं। आम लोग थोड़ी परेशानियों के बावजूद इस मुहीम के साथ कतारबद्ध होकर खड़े हैं। यही वजह है कि लाख कोशिशों के बावजूद नोटबंदी के खिलाफ की जा रही कुछ रैलियों में मोदी-मोदी के नारे लग रहे हैं।

(लेखक डॉ श्यामा प्रसाद मुखर्जी रिसर्च फाउन्डेशन में रिसर्च फेलो हैं एवं नेशनलिस्ट ऑनलाइन के संपादक हैं।)

नोटबंदी : आम जन कर रहे सरकार का समर्थन काला धन धारकों में मचा हड़कंप

कनिष्का तिवारी

8 नवंबर की शाम को प्रधानमंत्री मोदी के राष्ट्र के नाम संबोधन में नोटबंदी के ऐतिहासिक फैसले के ऐलान से देश भर में हलचल मच गयी। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने जब देश भर में 500 और 1000 के नोटों पर प्रतिबंध की घोषणा की तो काले धन की फसल उगाकर रखने वालो पर जैसे ओलों की बरसात हो गयी। जनता की खून-पसीनें की कमाई को अवैध और अनैतिक रूप से जमा करके बैठे ऐसे लोग अब मारे-मारे फिर रहे है और तरह तरह से आम जनता का हवाला देकर अपना उल्लू सीधा करने की कोशिश में लगे हैं।

500 और 1000 के नोटों पर प्रतिबंध के निर्णय की न केवल तकलीफ झेलने के बावजूद जनता सराहना कर रही है, बल्कि इस निर्णय में सरकार को पूरा सहयोग भी दे रही है। मगर विपक्षियों का रुख इस पर भी हास्यास्पद रहा है। कांग्रेस, आप, सपा, बसपा, तृणमूल कांग्रेस आदि तमाम दलों के प्रमुख नेताओं ने इस निर्णय को लेकर मोदी सरकार पर अतार्किक ढंग से सवाल उठाने की कोशिश की है। ऐसे में, सवाल यह उठता है कि आखिर इस नोटबंदी के निर्णय से ये विपक्षी दल इतनी पीड़ा में क्यों हैं ? निस्संदेह इन विपक्षी दलों का ऐसा आचरण जनता की नज़रों में उनकी संदिग्ध छवि ही प्रस्तुत कर रहा है।

दिल्ली, मुंबई समेत देश के अन्य राज्यों में पड़ रहे आयकर विभाग के छापे यह स्पष्ट करते है कि देश की जनता का पैसा किस तरह कुछ लोगों की झोली भर रहा था। काले धन की धर-पकड़ पर इस प्रतिबंध का जोरदार असर देखने को मिल सकता है। सबसे पहले तो ये 440 वॉल्ट का झटका उन के लिए है, जो बिस्तर पर करोड़ों नोट बिछा कर सोने के आदी हो चुके हैं। जाहिर है, इससे उनकी रातों की नींद हराम हो चुकी होगी। दूसरी बात यह कि अकस्मात हुए इस प्रतिबंध ने काला धन धारकों को ज़रा भी सजग होने का मौका ही नही दिया, इसलिए अब उनके पास सिवाय अपनी संपत्ति को सार्वजनिक करने अथवा नष्ट करने के कोई और चारा नहीं बचा है। तभी तो देश के विभिन्न हिस्सों में भारी संख्या में कहीं पांच सौ और हजार के नोट कूड़े के ढेर पर फेंकें मिल रहे तो कहीं जलते पाए जा रहे। ये दिखाता है कि नोटबंदी के इस निर्णय के बाद काला धन धारकों में किस कदर हडकंप मचा हुआ है।

तीसरी बात कि बाज़ार में इन दिनों जो नकली नोटों का बोलबाला था, इस निर्णय ने उस गोरखधंधे को भी नेस्तनाबूद कर दिया है। साथ ही, भारत को नुकसान पहुँचाने के लिए बांग्लादेश और पाकिस्तान जैसे मुल्कों से जो नकली नोटों का भण्डार यहाँ आता था, वह भी अब किसी काम का नही रहा। इस निर्णय से न केवल दूरगामी तौर पर अर्थव्यवस्था को मजबूती मिलेगी बल्कि काले धन की जब्ती के बाद महंगाई पर भी अंकुश लगेगा। देश की मुद्रा भी मजबूत होगी और विकास दर में भी वृद्धि होने की संभावना है।

नोटबंदी ने देश में एक जागरूकता फैलाने का भी काम किया है और लोगो के बीच इस धारणा को मजबूत किया है कि बात अगर देश की भलाई हो तो पूरा देश एक सूत्र में पिरोये धागे समान हो सकता है। जाहिर है, इस पर प्रश्न उठाने वाले लोग जो सिर्फ सुर्खियाँ बटोरने के बलबूते अपने राजनैतिक वजूद को बचाए रखते हैं, उनको यह दिखाई देना मुश्किल है कि देश की जनता सरकार के इस साहसिक निर्णय से परेशान नहीं है, बल्कि सहयोग के साथ अपना योगदान देने के लिए संकल्पित भी है। लोगो को भड़काकर, उनमें फूट डालकर शासन करने की नीति औपनिवेशिक काल की थी। मगर, यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि स्वयं को देशभक्त के ताज से नवाजने वाले तमाम विपक्षी नेता भी आजकल इन हथकंडो का उपयोग करने से बाज नही आ रहे।

इस निर्णय के बाद उन लोगों को कोई विशेष समस्या नहीं है, जिनके खाते में उनकी जायज कमाई का पैसा है। जबकि तमाम ऐसे लोग जिन्होनें गलत ढंग से धनार्जन किया है, अन्दर ही अंदर डरे-सहमें बैठे होंगे। उनकी अकूत संपत्ति व्यर्थ हुई पड़ी है और उसे पुनः उपयोगी बनाने के लिए अगर वे बैंक जाते हैं तो काली कमाई की कलई खुलना लगभग तय है। तिसपर आय कर और दो सौ प्रतिशत जुर्माने का डंडा तो पड़ना ही है। एक बात ये भी है कि जो जनधन बैंक खाते पिछले 6 महीने से निष्क्रिय पड़े हों, अगर आज अचानक उनमें लाख-दो लाख रुपये का हस्तांतरण होता है तो ये भी एक संदेहजनक गतिविधि है जिसपर बैंक अपनी पैनी नज़र बनाये हुए है और जिसके चलते आयकर विभाग भी चुस्ती से काम करते नज़र आया। देश में मुख्य अर्थव्यवस्था और समानांतर अर्थव्यवस्था को एक ही धारा में लाने में भी यह एक बड़ा कदम है।

इस निर्णय के जरिये कैशलेस इकॉनोमी को बढ़ावा मिलने का भी अनुमान है, जिसे उस वक़्त लागू किया गया जब देश में सुविधाजनक कैश ट्रांसेक्शन की कमी है। कैशलेस ट्रांसेक्शन से आर्थिक पक्ष मजबूत करने में हमें सहायता मिलेगी साथ ही कर दाताओं को भी इसमे सहूलियत होगी। कैशलेस ट्रांजेक्शन वो चीज है, जो जितना अधिक बढ़ेगा, देश से भ्रष्टाचार की संभावना उतनी ही कम होगी।

काले धन को संजोने की कोशिश तो अब भी जारी है, हाथ पैर तो अब भी मारे जा रहे है फिर वह चाहे रेलवे टिकेट करवा कर किया जाये अथवा किसान क्रेडिट कार्ड का इस्तेमाल करके। लेकिन, इन सब गतिविधियों पर सरकार की पूरी नज़र है। सरकार ने ये निर्णय निश्चित तौर पर इन सब पहलुओं पर विचार-विमर्श करके ही लिया होगा। अतः काला धन धारकों का सरकार को चकमा देकर निकलना मुश्किल है और कहना गलत नहीं होगा कि ‘अबकी बार उन्हें मोदी सरकार के सामने डालने होंगे हथियार’।

(लेखिका पत्रकारिता की छात्रा हैं। ये उनके निजी विचार हैं।)

नोटबंदी का फिजूल विरोध कर खुद को 'संदिग्ध' बना रहा विपक्ष

आदर्श तिवारी

जबसे केंद्र सरकार ने पांच सौ और हजार के नोटों को बंद किया है, देश में एक विमर्श चल पड़ा है कि यह फैसला किसके हक में है ? सबसे पहले एक बात स्पष्ट होनी चाहिए कि इस फैसले से आम जनता को कुछेक दिन की थोड़ी दिक्कत है, जोकि सरकार भी मान रही है, लेकिन काले कारोबारियों, हवाला कारोबारियों, आतंकवाद के पोषकों के लिए यह फैसला त्रासदी लेकर आया है। सभी भ्रष्टाचार के अड्डो पर सन्नाटा पसरा हुआ है। यकायक इस फैसले ने सभी दो नंबर के धंधे करने वालों की कमर तोड़ के रख दी है। सवाल पर गौर करें तो इस फैसले में किसका हित छुपा है, इसपर व्यापक विमर्श की जरूरत है। यह एक राष्ट्रहित से जुड़ा महत्वपूर्ण फैसला है, जिसमें न केवल आगामी भविष्य में भारत की आर्थिक स्थिति और मजबूत होगी बल्कि भ्रष्टाचार, आतंकवाद पर भी अंकुश लगाने में यह सहायक साबित होगा। यही कारण है कि मोदी सरकार इस फैसले के बाद आम जनता को हो रही परेशानियों को लेकर सजग तो है ही, परन्तु इसके परिणाम राष्ट्र को नई दिशा देने वाले होंगें।

प्रधानमंत्री खुद देशवासियों से बार-बार यह अपील कर रहें हैं कि 'देशहित के लिए थोड़ी कठिनाई उठनी पड़े तो उठाइये'। सरकार की इस अपील को आम लोगों ने भी माना है और देश के लिए थोड़ी कठिनाई उठाने में कोई परहेज़ नहीं कर रहे है। परन्तु इस फैसले के बाद से देश के काले कारोबारियों, सीमापार आतंकवाद के जनको की नींद हराम हो गई है। कश्मीर से पत्थरबाजी भी रुक चुकी है। लेकिन, इन सबसे इतर विडंबना यह है कि समूचा विपक्ष इस मसले पर बेहद अतार्किक और अकारण रूप से सरकार के खिलाफ लामबंद नज़र आ रहा है। संसद से सड़क तक विपक्षी दलों का फिजूल का ड्रामा जारी है। संसद ठप है और विपक्ष अपनी फिजूल की राजनीति करने में व्यस्त है।

गौर करें तो भ्रष्टाचार के खिलाफ सरकार के इस बड़े अभियान में सहयोग करने की बजाय आम जनता की आड़ लेकर विपक्षी दल अपने 'विरोध के लिए विरोध' के एजेंडे को अंजाम दे रहे हैं। यह वो राजनेता हैं, जिनको इस फैसले से करारा झटका लगा है। अरविन्द केजरीवाल और ममता बेनर्जी ने दिल्ली के आजादपुर मंडी में आयोजित एक रैली में इस फैसले को लेकर सरकार पर फिजूल का निशाना साधते हुए इसकी तुलना आपातकाल से कर दी और इसे वापस न लेने पर आंदोलन की धमकी दे डाली। हालांकि जनता ने उनके इस पूरे वितंडे में बिलकुल भी साथ नहीं दिया बल्कि उनके धरने में ही मोदी-मोदी के नारे लग गए। अब सवाल यह उठता है कि यह आंदोलन किस लिए ? नोटबंदी के फैसले को वापस लेने की मांग क्यों ? क्या भ्रष्टाचार के विरूद्ध इस लड़ाई में अपनी छिछली राजनीति के लिए विपक्ष भ्रष्टाचार पर अपनी सहमति प्रदान कर रहा ? अगर विपक्ष को आम लोगों की इतनी ही चिंता है तो सरकार को ऐसे सुझाव अभी तक क्यों नही दिए जिससे इस फैसले को और अच्छे-से आगे बढ़ाया जाय ? आखिर एक रचनात्मक विपक्ष की यही भूमिका न होती है! आम जनता के नाम पर रुदन कर रहा विपक्ष केवल निजी स्वार्थ से भरा हुआ है। आमजनता की दुहाई देकर यह लोग अपनी राजनीतिक रोंटियाँ सेंकने में लगे हुए हैं। मगर यह विपक्षी दल नहीं समझ रहे कि इनका यह व्यवहार निश्चित और कुछ नहीं, सिर्फ जनता के बीच इनकी छवि को संदिग्ध बना रहा है।

सरकार लोगों की समस्याओं के प्रति एकदम सजग बनी हुई है और हर समस्या को दूर करने के लिए नियम ला रही है, ताकि आम जनता को जल्द राहत मिले तथा बैंकिग व्यवस्था सुचारू रूप से चले। किन्तु, इन सब में विपक्ष बांधा डालने का काम कर रहा है, जो निंदनीय है। बहरहाल, कहीं न कहीं यह बात आर्थिक विश्लेषक भी मानतें है कि यह फैसला भ्रष्टाचार और आतंकवाद की कमर तोड़ने वाला है। ऐसे फैसले पर विपक्ष का यह अड़ियल रवैया निहायत ही निराशाजनक है।

(लेखक स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं। ये उनके निजी विचार हैं।)

नोटबंदी का विरोध करने वालों से सावधान रहने की जरूरत

पुष्कर अवस्थी

भारत का आज का काल, एक क्रांति के दौर से गुजर रहा है। भारत के जनमानस को शायद अभी पूरी तरह से एहसास नही है कि वह, उस सौभाग्यशाली पीढ़ी का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं, जो भारत के बदलने के हर पल पल को न सिर्फ अपने अंदर समेट रही है, बल्कि उसकी भागीदार भी बन रही है। यह शायद इसलिए है, क्योंकि यह अभी तक एक परस्पर संघर्षहीन क्रांति है, जो भारत में 16 मई 2014 से शुरू हो चुकी है। जनमानस, जब क्रांति की बात करती है तो उसके जहन में एक ही तस्वीर उभरती है, जिसमें जनता सड़क पर आ जाती है और वर्षो से सत्ताधिकार जमाये वर्ग को उखाड़ फेंकती है। लेकिन भारत में यह क्रांति अभी तक लोकत्रांतिक व्यवस्था से निकल कर आयी है, जिसमें जनता ने वोट के माध्यम से 6/7 दशको से सत्ता पर काबिज़ वर्ग को हटा दिया है और एक परिवर्तन की राह को देख रही है। सही मायने में 'क्रान्ति' शब्द का प्रयोग सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्थाओं में परिवर्तन की ओर संकेत के लिए किया जाता है। इसको यदि राजनीतिक सिद्धांत से समझें तो क्रांति वह है, जो किसी देश में राजनीतिक सत्ता के आकस्मिक परिवर्तन से आरंभ होती है और फिर वहीं के सामजिक जीवन को नए रूप में ढाल देती है।

भारत ने जो ढाई वर्ष पूर्व हुए राजनैतिक सत्ता के परिवर्तन को देखा है, अब उस परिवर्तन के सामाजिक जीवन में प्रवेश का समय शुरू हो गया है। उसकी शुरुआत नरेंद्र मोदी के काले धन की संस्कृति पर प्रहार से हो चुकी है और इसी के साथ भारत की राजनीती के स्थापित अघोषित नियमो के अंत की भी शुरुआत हो गयी है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के इस प्रहार को जहाँ देश की जनता ने कुछ तकलीफों के बाद भी हाथो-हाथ लिया है, वहीँ प्रधानमंत्री मोदी के काले धन से निपटने की दृढ़ता से घबड़ाकर काले धन के संरक्षकों और उससे पल्लवित तन्त्र ने राजनैतिक विचारधारा और सामाजिक व संसदीय मर्यादाओ के बन्धनों को तोड़कर मोदी के विरुद्ध हाथ मिला लिए है।

मोदी जी के राजनैतिक विरोधियों के रुदन और रोष को तो जनता समझ ही रही है, लेकिन उसके साथ उनके कारणों को भी समझ रही है। केजरीवाल इसलिए व्यथित हैं, क्योंकि संभवतः उनकी अपनी पार्टी का सारा पैसा जो पंजाब चुनाव में लगना था, डूब चुका है। ममता बनर्जी इतनी बदहवास हो गईं कि वह बंगाल छोड़ दिल्ली ही आकर बैठ गयी हैं। कहीं ऐसा तो नहीं कि ये उनकी सरकार के सरक्षण में चलने वाले उनके वोट बैंक अवैध बंगलादेशियों द्वारा "मालदा" से संचालित जाली नोटों का धंधा तितर-बितर होने और शारदा चिट-फंड के सैकड़ो करोड़ रुपये डूबने का गम हो ? राहुल गाँधी एक लाइन से दूसरी लाइन में इस लिए भाग रहे हैं, क्योंकि उनके परिवार और उनकी पार्टी ने जिस संस्कृति को जन्म दिया व संरक्षित किया है, वह आज भयावह रूप से अपने अंत को देख रही है। उत्तर प्रदेश के सैफई परिवार के लोग इस कदर शोक में चले गए कि जहाँ उनके प्रमुख मुलायम सिह यादव को पूरे देश ने 7 दिन की मोहलत की मांग करते हुए देखा है, वहीँ उनके पुत्र अखिलेश यादव को काले धन को भारतीय अर्थव्यवस्था की जरूरत बताकर उसकी वकालत करते हुए भी देखा है। मायावती भी सदमे में हैं। लालू यादव तो खैर अपनी जबान और गवई व्यंग्य की विधा को ही खो बैठे हैं, क्योंकि नोटबंदी बिहार में कुख्यात 'दरभंगा' मॉड्यूल का धंधा उजड़ गया है, जो उनके संरक्षण में जाली नोटों के व्यापार से फला फुला था। राजनीतिक लोगो के साथ मिडिया का एक धड़ा भी अकबकाया हुआ है, जो राजदीप, रवीश जैसे कथित पत्रकारों की अगुवाई में एक से एक झूठ का बाजार गर्म करने में संलग्न है।

बहरहाल, आज काले धन को संरक्षित करने के लिए गरीबों की तकलीफ का बहाना बनाकर जो लोग लामबंद हुए हैं, वह निश्चित रूप से शक्तिशाली हैं और उनकी राष्ट्रहित के प्रति उनकी विश्वसनीयता संदिग्ध प्रतीत होती है। ऐसे में, सभी भारतीयों को चाहिए कि ऐसी कोशिश करें कि किसी भी तरह का उपद्रव और दंगा न हो और यदि काले धन के हिमायती प्रधानमंत्री मोदी पर या उनकी सरकार पर कोई आक्रमकता दिखाते है तो लोकतान्त्रिक ढंग से उनका माकूल उत्तर भी दिया जाय। आज भारत एक ऐसी क्रांति का भागी हो रहा है, जहाँ शासक को जनता का पूरा समर्थन प्राप्त है और जनता अपने भविष्य के लिए मोदी सरकार के समर्थन में खून और पसीना बहाने के लिए तैयार है। आप तैयार और सजग रहिये और एक नारा हमेशा याद रखिये जो नेता जी सुभाष चन्द्र बोस ने भारतवासियों से कहा था. " तुम मुझे खून दो मैं तुम्हे आज़ादी दूंगा". तब तो हम लोग नही थे, लेकिन आज हैं। आज हमे आज़ादी की उम्मीद है और उसके लिए खून भी देना हो तो हम देंगे।

(ये लेखक के निजी विचार हैं।)

नोटबंदी के निर्णय से इतने हलकान क्यों हैं विपक्षी दल ?

पीयूष द्विवेदी

मोदी सरकार द्वारा पांच सौ और हजार के नोट बंद करने के निर्णय को जहां एक तरफ भारी जन-समर्थन प्राप्त होता दिख रहा है। लोग थोड़ी-बहुत परेशानी उठाने के बावजूद भी इस निर्णय के प्रति सहमति जता रहे हैं। वहीँ दूसरी तरफ तमाम विपक्षी दल सरकार के इस निर्णय के बाद हलकान नज़र आ रहे हैं। इन दलों की समस्याओं को उनके वक्तव्यों व सरकार पर लगाए जा रहे उलूल-जुलूल आरोपों से समझा जा सकता है।

कांग्रेस की तरफ से शुरुआत में तो इस निर्णय के प्रति सहमति जताई गई, पर जल्दी-ही वो भूल सुधार करते हुए अपने 'विरोध के लिए विरोध' के एजेंडे पर आ गई। कांग्रेस की तरफ से इसे आम आदमी को मुश्किल में डालने वाला कदम बताया गया तो वही कांग्रेस उपाध्यक्ष राहुल गांधी कहीं न कहीं इस फैसले का प्रतीकात्मक विरोध करने के लिए लाखों-करोड़ों की कार से चार हजार रूपये निकालने पार्लियामेंट एटीएम पहुँच गए। उनकी इस नौटंकी से और कुछ तो नहीं हुआ, मगर आम जनता को असुविधा जरूर हुई। खैर, कांग्रेस का कहना है कि वो नोटबंदी के इस निर्णय को संसद के शीतकालीन सत्र में मुद्दा बनाएगी।

कांग्रेस के अलावा दिल्ली के मुख्यमंत्री, आम आदमी पार्टी के राष्ट्रीय संयोजक और स्वयंभू ईमानदार नेता अरविन्द केजरीवाल साहब इस निर्णय से अलग बिफरे नज़र आ रहे हैं। उनका कहना है कि सरकार ने इस निर्णय की जानकारी अपने लोगों यानी भाजपा को पहले से देकर अपना पैसा सुरक्षित कर लिया होगा और अब दूसरों को परेशान कर रहे हैं। ये एकदम आधारहीन और अमान्य बात है। क्योंकि जैसा कि सरकार कह भी चुकी है और देखा भी जा सकता है कि यह अत्यंत गोपनीय निर्णय था। इसकी जानकारी सिर्फ इससे जुड़े कुछेक लोगों को ही थी। यदि भाजपा में इसकी ज़रा भी भनक होती तो यह इतना गोपनीय कभी नहीं रह पाता और जैसे न तैसे मीडिया के सूत्रों तक इसकी भनक अवश्य पहुँच गई होती। और वैसे भी, जो प्रधानमंत्री मोदी अपने परिवारजनों तक को अपने ओहदे का कोई अतिरिक्त लाभ नहीं देते, उन्होंने इस गोपनीय निर्णय की जानकारी अपनी पार्टी को पहले से ही दे दी होगी, ये कहना एकदम अनुचित और अन्यायपूर्ण है। अतः इस तरह की फिजूल की बातों के जरिये सरकार का विरोध करने से पहले अरविन्द केजरिवाल को सोचना चाहिए। मगर, उन्हें तो बस मोदी विरोध करना है, इसलिए पहुँच गए दिल्ली के लक्ष्मीनगर इलाके में बैंक के पास लाइन में लगे लोगों को भड़काने। पर वहाँ उनकी दाल गल नहीं पाई और लोगों ने उनके खिलाफ नारेबाजी कर उन्हें बेरंग लौटा दिया।

इधर यूपी की सत्तारूढ़ समाजवादी पार्टी के सर्वेसर्वा मुलायम सिंह यादव ने इस निर्णय को ठीक तो कहा, मगर यह भी कह गए कि एक सप्ताह की पूर्व सूचना देनी चाहिए थी। अब उन्हें कौन समझाए कि इस निर्णय का अचानक आना ही तो इसकी असली ताकत है। अगर पूर्व सूचना दे दी जाती तो फिर इसका असर ही कितना होता। वैसे भी, उन्हें पूर्व सूचना की इतनी जरूरत क्यों महसूस हो रही है ? उनका कौन-सा धन है, जिसे ठिकाने लगाने के लिए वे समय चाहते थे। यूपी की दूसरी सबसे बड़ी पार्टी बसपा के तेवर तो इस निर्णय पर और भी तीखे रहे। बसपा प्रमुख मायावती ने इसे आर्थिक आपातकाल बता दिया। चूंकि, बसपा प्रमुख मायावती के विषय में पैसे लेकर टिकट देना प्रसिद्ध है। अब इस चुनाव के समय में टिकट बेचकर उन्होंने जितना पैसा इकठ्ठा किया होगा, वो सब मोदी सरकार के इस निर्णय से बेकार ही हो गया। बैंक जाने पर न केवल उसपर कर लगेगा, बल्कि उसकी पूरी जांच-पड़ताल भी होने लगेगी। संभव है कि इस निर्णय के विरोध के पीछे बसपा का यही कष्ट मुख्य कारण हो।

इन सब बातों को देखते हुए कह सकते हैं कि मोदी सरकार द्वारा नोटबंदी के निर्णय के जरिये चोट तो काले धन पर की गई है, लेकिन इससे बिलबिलाहट विपक्षी खेमे में अधिक नज़र आ रही। ऐसे में, भाजपा अध्यक्ष अमित शाह का ये सवाल कि सरकार के इस निर्णय से कांग्रेस, आप, सपा और बसपा जैसे दल इतनी पीड़ा में क्यों हैं, जनता के दिल-दिमाग में भी उठ ही रहा होगा। इस तरह का आचरण प्रस्तुत कर कहीं न कहीं ये विपक्षी राजनीतिक दल स्वयं को जनता की नज़रों में संदिग्ध ही बनाते जा रहे हैं।

(लेखक स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं। ये उनके निजी विचार हैं।)

नोटबंदी के निर्णय से खुश है जनता, बस विपक्षी दलों को हो रही पीड़ा

अरविन्द जयतिलक

एक कहावत है कि प्रहार वहां करो जहां चोट पहुंचे। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने ऐसा ही करके काले धन के कारोबारियों और काली कमाई से सियासत का मचान तान रखे सियासतदानों की कमर तोड़ दी है। वे समझ नहीं पा रहे हैं कि छलपूर्वक अर्जित की गयी काली कमाई को कैसे और कहाँ ठिकाने लगाएँ। अब उन्हें चारों तरफ का रास्ता बंद नजर आ रहा है। प्रधानमंत्री ने दो टूक कह भी दिया है कि उनका अगला निशाना बेनामी संपत्ति होगा। यानी आने वाले दिनों में ऐसे लोगों पर भी गाज गिरनी तय है, जो अपनी काली कमाई को रियल इस्टेट और गोल्ड में निवेश कर रखे हैं। यह भी संभव है कि सरकार काले धन से निपटने के लिए अगले फिस्कल ईयर के अंत तक गोल्ड इंपोटर्स पर रोक लगा दे। ऐसा इसलिए कि बड़े नोट बंद होने के बाद बड़े पैमाने पर सोने की खरीदारी की गयी। अच्छी बात है कि सरकार ने रात के अंधेरे में सोना बेचने और खरीदने वालों की जांच शुरु कर दी है। आर्थिक विशेषज्ञों की मानें तो काले धन के कुबेर, टैक्स डिपार्टमेंट से बचने के लिए फर्जी खाते खोलने के अलावा अन्य विकल्पों को भी आजमा सकते हैं। लेकिन, इन सभी पर सरकार की कड़ी नजर है।

बहरहाल, काले धन के कारोबारियों का काला साम्राज्य ढहने से उनकी बेचैनी बढ़नी लाजिमी है। लेकिन, हैरान करने वाला तथ्य है कि देश के विपक्षी सियासतदान भी अपने आचरण से कुछ ऐसा ही आभास करा रहे हैं मानों प्रधानमंत्री का वज्रपात काले धन के कुबेरों पर ही नहीं, उन पर भी हुआ है। संसद में जिस तरह के तर्क विपक्षी दलों द्वारा गढ़े जा रहे हैं, उनसे ऐसा ही प्रतीत होता है। अन्यथा, कोई कारण नहीं कि जब देश के किसानों से लेकर सीमा पर डटे जवानों तक इस फैसले पर प्रसन्नता जाहिर करें और सियासी दल छाती पीटे। विपक्ष की राजनीति की रवायत है कि जनता के सुर में सुर मिलाना होता है। लेकिन, यहाँ मामला उल्टा दिख रहा है। जनता खुश है और विपक्षी दल मातम मना रहे हैं। वे इस कदर दिगभ्रमित हैं कि समझ नहीं पा रहे कि प्रधानमंत्री की आलोचना किस तरह करें। इस नजारे से स्पष्ट है कि प्रधानमंत्री ने सही जगह पर करारा चोट किया है।

देश की जनता प्रधानमंत्री के निर्णय से संतुष्ट है और मान रही है कि यह फैसला देश की तकदीर बदलने वाला है। देश के अर्थशास्त्री भी इस कदम को देश की अर्थव्यवस्था का पुनर्जन्म मान रहे हैं। उनकी मानें तो बड़े नोट बंद होने से काले धन पर अंकुश लगेगा और अमीरी एवं गरीबी के बीच की खाई पटेगी। महंगाई से जनता को निजात मिलेगा और रोटी, कपड़ा, मकान सस्ते होंगे। आसमान छू रही जमीनों की कीमत कम होगी। आम जन भी सहमत हैं कि अगर इस पुनीत कार्य में उन्हें बैंकों के सामने पंक्तिबद्ध होने की जरुरत पड़ रही है तो कोई समस्या नहीं, वे इसके लिए तैयार हैं। लेकिन, विडंबना है कि विपक्षी दलों को जनता का यह समर्पण रास नहीं आ रहा है। वे जनता के उद्घोष सुनने व समझने को तैयार नहीं हैं। उल्टे उन्हें गुमराह करने की कोशिश कर रहे हैं। नित-नए खुलासे कर रहे हैं कि प्रधानमंत्री ने यह कदम उठाकर जनता का कितना नुकसान किया है। जरा गौर कीजिए कि ये वही सियासी सुरमा हैं जो कल तक सीना ठोंककर चिचिया रहे थे कि काले धन पर प्रधानमंत्री चुप क्यों हैं ? वे क्यों नहीं काले धन के कुबेरों के विरुद्ध कड़ी कार्रवाई कर रहे हैं ? कहां गया प्रधानमंत्री का 56 इंच का सीना ? इत्यादि। लेकिन कहते हैं न कि राजनीति पलटकर वार भी करती है। अब जब प्रधानमंत्री ने भी काले धन पर सख्त तेवर दिखाने शुरु कर दिए हैं तो इन बड़बोले सुरमाओं की घिग्घी बंध गयी है। वे किंकर्तव्यविमुढ़ हैं। और उनकी जुबान संतुलित होने के बजाए अनियंत्रित हो चली है। वे मर्यादाहीन जुगाली पर उतारु हैं। पहले तो उन्हें समझ में ही नहीं आ रहा था कि बड़े नोट बंद करने के फैसले पर टिप्पणी क्या करें ? कोई चौबीस घंटे बाद बोला तो कोई टिप्पणी करने में 72 घंटे लगा दिए।

अब जब देश-दुनिया में प्रधानमंत्री के कदम की प्रशंसा हो रही है और उनकी छवि एक लौह पुरुष की बन चुकी है तो विपक्षी दलों की छाती पर सांप लोटने लगा है। वे किस्म-किस्म के अनर्गल प्रलापों से प्रधानमंत्री की छवि खराब करने की कोशिश कर रहे हैं। कोई उपदेश बघार रहा है कि इस योजना को कुछ दिन के लिए टाल देना चाहिए तो कोई प्रधानमंत्री को पत्र लिख रहा है। कोई देश को यह हवा-हवाई गणित समझा रहा है कि प्रधानमंत्री ने किस तरह अपने दल के लोगों का काला धन सफेद कर लिया और विपक्ष को मौका नहीं दिया। कुछ ऐसे सियासतदान भी हैं जो बैंकों की कतार में शामिल होकर लोगों की बेचैनी बढ़ाने की ताक में हैं। देश के लोग यह देख-सुनकर हैरान हैं कि जो लोग जीवन में कभी भी बैंकों की चौखट पर कदम नहीं रखे, वे अब पंक्ति में खड़े होने की तकलीफों का दर्द बयां कर रहे हैं। विपक्षी दल यह भी सवाल दाग रहे हैं कि अगर बड़े नोटों को बंद ही करना था तो फिर पहले ही तैयारी क्यों नहीं की गयी ? क्या विपक्षी दल यह कहना चाह रहे हैं कि सरकार को पहले ही बता देना चाहिए था कि उसकी योजना बड़े नोटों को बदलने की है ? अगर सरकार ऐसा करती तो क्या काले धन के खिलाड़ी काले धन को ठिकाना लगाने में कामयाब नहीं हो जाते।

विपक्षी दल चाहे जितनी जुगाली करें पर देश की जनता उनकी मनःस्थिति को भलीभांति समझ रही है कि वे क्यों परेशान हैं। जनता को पता है कि उनकी आड़ में विपक्षी दलों का रुदन तो महज बहाना भर है। संभव तो यह है कि उनके दर्द का असल कारण उनके काले धन का सर्वनाश होने की पीड़ा हो। किसी से छिपा नहीं है कि देश में बहुतेरे ऐसे दल हैं जो चुनाव में पार्टी का टिकट बेचते हैं। इन दलों के नियंताओं के पास बेशुमार काला धन है और इस धन का बड़ा हिस्सा बड़े नोटों के रुप में है। चूंकि, अब उनका धन मिट्टी बन चुका है, इसलिए उनकी पीड़ा उफान मार रही है, जिसे वे जनता की आवाज में ढ़ालने की बेमानी और नाकामयाब कोशिश कर रहे हैं।

(लेखक वरिष्ठ स्तंभकार हैं। ये उनके निजी विचार हैं।)

नोटबंदी :
कैशलेस अर्थव्यवस्था की तरफ बढ़ता देश

सुनीता मिश्रा

देश को भ्रष्टाचार और कालेधन से मुक्त करने के लिये प्रधानमंत्री नेरंद्र मोदी की 8 नवंबर को एकाएक की गई घोषणा ने सभी हलकनों में हलचल-सी पैदा कर दी। इस ऐलान के बाद से सभी 500 और 1000 रूपये के पुराने नोट अमान्य हो गये। हालांकि इस देशव्यापी फैसले से लोगों को थोड़ी समस्या का सामना तो करना पड़ रहा है, किंतु अब लोग कैशलेस और मोबाइल वॉलेट का अधिक उपयोग कर रहे हैं, जिससे देश की अर्थव्यवस्था पहले की अपेक्षा कहीं अधिक पारदर्शी होगी और काले धन के कुबेरों का भय बढ़ेगा।

हाल ही में नीति आयोग के मुख्य कार्यकारी अधिकारी अमिताभ कांत ने कहा है कि भारत में महाशक्ति बनने की ताकत है और यह ताकत देश के करोड़ों युवाओं के भरोसे है। इसके साथ ही उन्होंने कहा कि वह दिन दूर नहीं, जब भारतीय अर्थव्यवस्था कैशलेस और पेपरलेस हो जाएगी। इसके साथ ही कांत ने कहा, ‘हमारे देश में जितने शोध हो रहे हैं, जितना हुनर है, जितने सक्षम युवा हैं, उसके बाद किसी प्रकार की कोई शंका नहीं रह जाती है कि हम महाशक्ति नहीं बनेंगे।’

अमिताभ कांत की कही गई बातें विकासोन्मख देश के लिये बेहद ही सटिक बैठती हैं, क्योंकि अभी तक हम अपनी ताकत को खुद ही नहीं पहचान पाये हैं। कैशलेस अर्थव्यवस्था बनने के बाद हम भी अमेरिका और रूस जैसे शक्तिशाली देशों की कतार में आ जाएंगे। माना कि ये इतनी जल्दी संभव नहीं है, इसके लिये हमें कई अड़चनों का सामना करना पड़ेगा। ग्रामीण क्षेत्रों में जहां लोग अभी भी इस नई तकनीक से रूबरू नहीं हुए हैं, उन्हें इसके प्रति जागरुक करना होगा, ज्यादा से ज्यादा इंटरनेट सेवा का विस्तार करना होगा। इस विषय में और अधिक जागरूकता लानी होगी। गौरतलब है कि पीएम मोदी सत्ता में आने के बाद से हर मंच पर डिजिटल इंडिया की मांग दोहराते रहे हैं। उनका सपना है कि वह भारत का डिजिटलाइजेशन करें। वैसे भी हमारे देश के नौजवान हर क्षेत्र के लिए नए-नए आईडिया लेकर आ रहे हैं। स्टार्टअप इंडिया में बढ़-चढ़कर योगदान दे रहे हैं, जो कि देश के लिए गर्व की बात है।

हाल ही में आई रिर्पोटों के अनुसार सरकार के इस फ़ैसले के बाद कार्ड स्वाइप मशीन की मांग बढ़ी है और प्री-पेड वॉलेट्स में 60 से 70 पर्सेंट का ग्रोथ है। आज भी लोग ऑनलाइन शॉपिंग कर रहे हैं, आनॅलाइन टिकट बुक करा रहे हैं, खाने-पीने के आइटम, गॉरमेंट्स इत्यादि के लिये डेबिट कार्ड और प्लास्टिक मनी का प्रयोग कर रहे हैं। चाय वाले से लेकर सब्जी वाले तक का पेटीएम पर अकाउंट है, ताकि लोग सीधा उसके अकाउंट में पैसा जमा करा सके। खैर, ये सब देखने के बाद तो यही संभावना नजर आ रही है कि वो दिन दूर नहीं जब भारत का हर देशवासी कैशलेस लेन देन को प्रथम प्राथमिकता देगा। वहीं दूसरी ओर इससे आप ये भी अंदाजा लगा सकते हैं कि भले से ही लोगों को ये सब करने में थोड़ी मजबूरी का सामना करना पड़ रहा हो, लेकिन धीरे-धीरे ये सब चीजें उन्हें सरल और सुगम लगने लगेंगी।

विपक्ष भले से इस मामले पर अपनी राजनीति भुनाने में लगा हो, लेकिन कैशलेस अर्थव्यवस्था से केवल पीएम मोदी को ही फायदा नहीं होगा, बल्कि समूचे देशवासियों को इसका लाभ मिलेगा और भविष्य में भी हम अन्य देशों की तुलना में कहीं अधिक तरक्की कर सकेंगे। इसके साथ ही चोरी, डकैती और तमाम गैर कानूनी वारदातों पर भी लगाम लग सकेगी।

(लेखिका पेशे से पत्रकार हैं। ये उनके निजी विचार हैं।)

नोटबंदी पर जनसमर्थन की सूचक है निकाय चुनावों में भाजपा की जीत

पीयूष द्विवेदी

प्रधानमंत्री मोदी द्वारा 8 नवम्बर को पांच सौ और हजार के नोटों पर प्रतिबन्ध का ऐलान करने के बाद से इस निर्णय को लेकर राजनीतिक गलियारों में हो-हल्ला मचा हुआ है। विपक्ष द्वारा लगातार सरकार के इस निर्णय को जनता को परेशान करने वाला बताया जा रहा है। नोटबंदी पर जनता का मिजाज़ मांपने के लिए तमाम मीडिया संस्थानों द्वारा सर्वेक्षण भी किए गए, जिनमें इसके प्रति लोगों का समर्थन ही सामने आया। प्रधानमंत्री मोदी ने खुद अपने एप के माध्यम से एक सर्वेक्षण करवाया, इसमें 93 फीसदी लोगों ने इसके समर्थन में अपना मत रखा। लेकिन, इन सब सर्वेक्षणों पर को विपक्षी दलों और विचारधारा विशेष से प्रभावित बुद्धिजीवी वर्ग द्वारा नकारा जाता रहा। कहा जाता कि ये चंद लोगों पर आधारित हैं, इसलिए इनकी कोई विश्वसनीयता नहीं। इसी बीच देश के दो राज्यों महाराष्ट्र और गुजरात में निकाय चुनाव संपन्न हुए और इन चुनावों में जो जनमत सामने आया, उसने साफ़ कर दिया कि मोदी सरकार की नोटबंदी के बाद उसके प्रति जनता का मिजाज़ क्या है।

महाराष्ट्र के नगर निकाय चुनाव जिसे बुद्धिजीवी वर्ग मिनी विधानसभा चुनाव कहता है, में भाजपा ने लम्बी छलांग लगाते हुए महानगरपालिका के 147 में से 52 अध्यक्ष पदों पर जीत हासिल की है, इसीके साथ वो निकायों में नंबर तीन से सीधे नंबर एक की पार्टी बन गई है। भाजपा की ही सहयोगी पार्टी शिवसेना 23 सीटों के साथ दूसरे नंबर पर रही। पिछले बार की नंबर एक पार्टी एनसीपी को केवल 16 सीटों से ही संतोष करना पड़ा। कांग्रेस के खाते में भी सिर्फ 19 सीटें ही आ सकीं। स्पष्ट है कि महाराष्ट्र के इन निकाय चुनाव में जनता ने पूरी तरह से भाजपा को स्वीकृति प्रदान की है।

महाराष्ट्र के बाद बात गुजरात के निकाय चुनावों की करें तो यहाँ भाजपा का दबदबा और भी मजबूत हुआ है। यहां पर दो नगर पालिकाओं के चुनावों में भाजपा ने एकतरफा जीत दर्ज की है। केंद्र और राज्य में सत्ताधारी पार्टी को वापी नगरपालिका चुनाव में 44 में से 41 सीटें मिली हैं वहीं सूरत के कनकपुर- कनसाड़ नगरपालिका में 28 में से 27 सीटों पर विजय मिली। जबकि कांग्रेस को वापी में तीन और कनकपुर-कनसाड़ में एक सीट से संतोष करना पड़ा। वहीं जिला पंचायत, तालुका पंचायत और नगरपालिका उपचुनावों में भाजपा ने 23 और कांग्रेस ने महज आठ सीटों पर जीत हासिल की है।

इन दोनों ही राज्यों के निकाय चुनावों के बाद कहने की आवश्यकता नहीं रह जाती कि नोटबंदी पर जनता का मिजाज़ क्या है। विपक्षी दल और बुद्धिजीवी वर्ग सर्वेक्षणों को नकार सकते हैं, लेकिन इन चुनावों में जो जनमत सामने आया है, उससे आँख नहीं चुरा सकते। उन्हें स्वीकार करना चाहिए कि नोटबंदी के बाद भाजपा के प्रति जनसमर्थन बढ़ा है और जमीनी हकीकत यही है कि इस निर्णय से थोड़ी-बहुत परेशानी के बावजूद आम लोग बेहद खुश हैं। उन्हें लगता है कि देश में लम्बे समय बाद एक ऐसी सरकार आई है, जो कहने और योजनाएँ बनाने में अधिक वक़्त जाया करने की बजाय कदम उठाने में अधिक यकीन रख रही है। साथ ही, जनता यह भी देख रही है कि किस तरह नोटबंदी जैसे एक अच्छे निर्णय का बेहद अतार्किक ढंग से विपक्षी दलों द्वारा बेमतलब का विरोध किया जा रहा है। विपक्षी दलों का ये फिजूल विरोध जनता में उनके प्रति जो नकारात्मक सन्देश भेज रहा है, वो भी एक कारण है कि जनता उन्हें लगातार खारिज का रही है। मतदाताओं ने पहले असम और मध्य प्रदेश के उपचुनावों और फिर महाराष्ट्र व गुजरात के इन निकाय चुनावों में भाजपा को शानदार जीत देकर यह सिद्ध कर दिया कि अब वे उसीको चुनेंगे, जो काम करेगा।

अतः सही होगा कि विपक्षी दल अब भी जनता की नब्ज़ को समझें और नोटबंदी का अतार्किक ढंग से बेजां विरोध करने की बजाय इस महत्वपूर्ण निर्णय में सरकार के साथ खड़े हों। अन्यथा जिस तरह इन निकाय चुनावों में जनता ने उन्हें खारिज किया है, उसी तरह आगे भी करती रहेगी और एक दिन ऐसा आएगा कि इस देश में उन्हें अपने राजनीतिक अस्तित्व को बचाने के लिए संघर्ष करना पड़ेगा। वर्तमान समय की सच्चाई यही है कि जनता मोदी सरकार के निर्णय के साथ है और विपक्षी दलों को इस सच्चाई को सभ्यता के साथ स्वीकार करना चाहिए।

(लेखक स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं। ये उनके निजी विचार हैं।)

प्रधानमंत्री के सवालों का जवाब दें नोटबंदी का विरोध कर रहे विपक्षी

लोकेन्द्र सिंह

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने आगरा में परिवर्तन रैली को जिस अंदाज में संबोधित किया है, उसे दो तरह से देखा जा सकता है। एक, उन्होंने विपक्ष पर करारा हमला बोला है। दो, नोटबंदी पर सरकार और प्रधानमंत्री को घेरने के लिए हाथ-पैर मार रहे विपक्ष से प्रधानमंत्री ने सख्त सवाल पूछ लिया है। ऐसा सवाल जिसका सीधा उत्तर विपक्ष दे नहीं सकता। नोटबंदी का विरोध कर रहे नेताओं की ओर प्रधानमंत्री मोदी ने नागफनी-सा सवाल उछाल दिया है, जो निश्चित तौर पर उन्हें लहूलुहान करेगा। उन्होंने पूछ लिया कि यह कदम कालेधन वालों के खिलाफ उठाया गया है, फिर आपको परेशानी क्यों हो रही है? यकीनन प्रधानमंत्री का यह सवाल वाजिब है, क्योंकि परेशानी उठा रही आम जनता को भी यह समझ नहीं आ रहा है कि विपक्ष ने आखिर हाय-तौबा किस बात के लिए मचा रखी है ? क्या विपक्ष नहीं चाहता कि कालेधन के खिलाफ कार्रवाई हो? क्या विपक्ष नहीं चाहता कि जाली मुद्रा को खत्म किया जाए ? आखिर विपक्ष की मंशा क्या है? वह क्यों चाहता है कि नोटबंदी का निर्णय वापस लिया जाए और फिर से 500 और 1000 के पुराने नोट चलन में आएं? प्रधानमंत्री के तर्कसंगत सवाल से विपक्ष कठघरे में खड़े किसी अपराधी से कम नजर नहीं आ रहा है।

शारदा चिटफंड घोटाले और टिकट के लिए थैलियों का जिक्र करके प्रधानमंत्री ने नोटबंदी के खिलाफ मोर्चाबंदी कर रहे नेताओं की नीयत पर सवाल उठा दिए हैं। मोदी ने अपने पूरे भाषण में किसी का नाम नहीं लिया, लेकिन शब्दबाण लक्ष्य को भेदने वाले छोड़े। उल्लेखनीय है कि नोटबंदी के खिलाफ सबसे अधिक मुखर बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी हैं। वह इस मसले पर विपक्ष को एकजुट करने में बड़ी सक्रियता से जुटी हैं। उन्हें दिल्ली के मुख्यमंत्री और आम आदमी पार्टी के सर्वेसर्वा अरविंद केजरीवाल का साथ भी मिल गया है। बहरहाल, प्रधानमंत्री ने किसी लोहार की तरह ममता बनर्जी की नैतिकता पर चोट की है। उन्होंने साफ-साफ कह दिया- 'कैसे-कैसे लोग उन पर सवाल उठा रहे हैं, जिन्होंने नेताओं के दम पर चिटफंड में पैसे लगाए। चिटफंड के कारण सैकड़ों परिवारों को आत्महत्या करनी पड़ी। हमने चिटफंड वालों को सजा दी है। चिटफंड का उनका पूरा धन चला गया है।' शारदा चिटफंड घोटाले में ममता बनर्जी के कई मंत्रियों के नाम सामने आए थे और कई मंत्री तो जेल भी गए। खैर, जो राज्य (पश्चिम बंगाल) जाली मुद्रा के लिए सबसे अधिक कुख्यात है, उसी राज्य की मुख्यमंत्री जाली मुद्रा के अवैध कारोबार को समाप्त करने के कदम का स्वागत करने की जगह उसका विरोध कर रही हैं। क्या यह पर्याप्त कारण नहीं है कि ममता बनर्जी की नीयत पर शक किया जाए ?

उत्तरप्रदेश के विधानसभा चुनाव की तैयारी में जुटी बसपा प्रमुख मायावती के विरोध को भी प्रधानमंत्री ने सवालों के घेरे में खड़ा कर दिया। उन्होंने कहा कि कुछ लोग कहते थे, विधायक/सांसद बनना है तो इतने रुपये लाओ। थैलियों में नोट भर-भरकर रखे थे, उन नोटों का क्या हुआ ? देश में यह खेल बंद होना चाहिए, इसलिए हमने कोशिश की है कि गरीबों को हक मिले, मध्यम वर्ग का शोषण मिटे। कांग्रेस की पूर्ववर्ती सरकारों को भी वह सवालों के दायरे में लाए, क्योंकि सबकुछ जानते हुए भी कांग्रेस ने कुर्सी जाने के डर से जनहित में बड़ा निर्णय नहीं लिया। बहरहाल, प्रधानमंत्री ने संकेत की भाषा में तर्क के आधार पर जनता को संदेश दे दिया कि नोटबंदी का विरोध कर रहे नेताओं की तिजोरियों में कालाधन पड़ा है। जनता की परेशानी को अपनी ढाल बनाकर वह अपने कालेधन को बचाने की लड़ाई लड़ रहे हैं। वास्तव में उन्हें आम आदमी की परवाह नहीं, बल्कि अपने धन की चिंता है। यहाँ प्रधानमंत्री ने एक तीर से कई निशाने साधे हैं। अब देखिए, नोटबंदी के निर्णय से उन्होंने कालेधन, जाली नोट और आतंकियों की फंडिंग पर एक साथ चोट की है। खैर, सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी विरोधियों को 'शह-मात' में उलझाकर अपना दायरा बढ़ा रहे हैं। इस भाषण में उन्होंने इस बात के स्पष्ट संकेत दिए हैं कि वह भारतीय जनता पार्टी और अपनी सरकार को गरीब और मध्यम वर्ग के नजदीक ले जाना चाहते हैं। भाजपा पर यह बेजां तोहमत लगाई जाती है कि वह अमीरों की पार्टी है। अंबानी और अडाणी, प्रधानमंत्री मोदी के दोस्त हैं। इसीलिए विपक्ष यह भ्रम फैलाने का प्रयास कर रहा है कि नोटबंदी का निर्णय लेकर नरेन्द्र मोदी ने देश के गरीबों को बैंक और एटीएम के सामने कतार में खड़ा कर दिया है, जबकि अमीर अपने घरों में आराम से बैठे हैं। प्रधानमंत्री भली प्रकार समझते हैं कि भाजपा को अपना दायरा बढ़ाने के लिए इस झूठी छाप से बाहर निकलना होगा। इसलिए प्रधानमंत्री मोदी खुलकर कहते हैं- 'नोटबंदी के निर्णय में सबसे ज्यादा आशीर्वाद गरीब और मध्यम वर्ग के लोगों ने दिया है, जिन्हें मैं सिर झुकाकर नमन करता हूँ।' अपने भाषण में उन्होंने यह भी कहा कि गरीबों का हक मारने वालों को उन्होंने कड़ा दण्ड दिया है। अमीरों की तिजोरी से निकलकर बैंक में आए धन को गरीबों और जरूरतमंदों को उपलब्ध कराया जाएगा। भले ही मोदी विरोधी यह स्वीकार न करें, लेकिन सच यही है कि नोटबंदी के निर्णय का सबसे अधिक स्वागत इसी गरीब और

मध्यम वर्ग ने किया है, जो नोट बदलवाने के लिए कतार में खड़ा है। अब तक आए ज्यादातर सर्वेक्षण भी इस बात की हामी भरते हैं कि तकरीबन 85 प्रतिशत जनता कष्ट उठाकर भी इस निर्णय के लिए प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के साथ है। जनता का यह समर्थन इसलिए है, क्योंकि मोदी उसे यह समझाने में सफल रहे हैं कि यह सरकार गरीबों और मध्यम वर्ग की सरकार है। इस परिवर्तन रैली में भी मोदी ने प्रधानमंत्री ग्रामीण आवास योजना का शुभारम्भ किया, जो इसी वर्ग को समर्पित है। बहरहाल, यह कहने में कोई गुरेज नहीं कि जनता की भावनाओं और आकाक्षांओं को समझने में नरेन्द्र मोदी का मुकाबला विपक्ष का कोई भी नेता नहीं कर पा रहा है। यदि ऐसा होता, तब नोटबंदी का विरोध करने के लिए विपक्षी नेताओं को कुतर्क ढूंढकर लाने की जरूरत नहीं पड़ती। नोटबंदी के मुद्दे पर विपक्ष पूरी तरह चूक गया है। जबकि प्रधानमंत्री मोदी भारत के बहुसंख्यक वर्ग (गरीब एवं मध्यम वर्ग) में अपनी पैठ को मजबूत बनाते जा रहे हैं।

(लेखक माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता और जनसंचार विश्वविद्यालय में कार्यरत हैं। ये उनके निजी विचार हैं।)

मोदी सरकार को अर्थनीति सिखाने से पहले ज़रा अपनी गिरेबान में तो झाँक लीजिये, मनमोहन सिंह जी!

अरविन्द जयतिलक

पूर्व प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह जी, संसद में आपकी इस तकरीर कि नोटबंदी संगठित और कानूनी लूट-खसोट है और इस फैसले से देश के किसानों और उद्योगों पर बुरा प्रभाव पड़ेगा, ने कुल मिलाकर देश को हंसते-हंसते लोटपोट हो जाने का ही मौका दिया है। आपका यह प्रवचन ठीक उसी प्रकार है, जैसे कोई रोगी वैद्य किसी मरीज को बेहतर दवाओं का नुस्खा बताता है। आपको भान होना चाहिए कि स्वयं आपकी और आपके नेतृत्ववाली यूपीए सरकार दोनों का इतिहासपरक मूल्यांकन हो चुका है और आपकी सरकार आजाद भारत के सबसे भ्रष्टतम सरकारों में शुमार है। आप ही नहीं, बल्कि आपके महान अर्थशास्त्री होने की आत्ममुग्धता के शिकार पैरोकारों को भी नहीं भूलना चाहिए कि आपकी नेतृत्ववाली यूपीए सरकार न केवल देश में बल्कि दुनिया भर में बदनाम रही है। उस दौरान अमेरिकी अखबार वाशिंगटन पोस्ट ने आपको नाकामयाब और असहाय प्रधानमंत्री करार देते हुए आपकी सरकार को सबसे भ्रष्ट सरकार कहा था। तब आपके खैरख्वाहों ने लाल-पीले होते हुए अखबार को नसीहत दिया था कि वह माफी मांगे। यही नहीं, दुनिया की जानी-मानी अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका टाइम ने भी आपको फिसड्डी प्रधानमंत्री के तमगे से नवाजा था। उसने मैन इन शैडो शीर्षक से प्रकाशित अपने लेख में देश की आर्थिक वृद्धि में सुस्ती, भारी वित्तीय घाटा और रुपए की कमजोर स्थिति के लिए आपकी सरकार को जिम्मेदार ठहराया था।

देश जानना चाहता है कि अगर आप इतने ही महान अर्थशास्त्री प्रधानमंत्री थे, तो आपकी सरकार अर्थव्यवस्था को रसातल में जाने से क्यों नहीं रोक पायी ? क्या कारण रहा कि विदेशी निवेशक बाजार से भाग खड़े हुए और आप देखते रह गए ? क्या कारण रहा कि ढांचागत परियोजनाओं पर आपकी सरकार कोई ठोस निर्णय लेने में विफल रही और कल-कारखानों एवं उद्योग-धंधों के पहिए जाम हो गए ? देश जानना चाहता है कि कि आप जैसे महान अर्थशास्त्री के प्रधानमंत्री होने के बाद भी आर्थिक सुस्ती का माहौल क्यों बना रहा ? लेकिन तमाशा है कि आप अपनी बदनाम सरकार की काली कारस्तानी पर अफसोस जताने और देश से माफी मांगने के बजाए मौजूदा मोदी सरकार पर सवाल दाग रहे हैं जो कि देश को कालेधन से मुक्त कराने के लिए प्रयासरत है।

क्या उचित नहीं होता कि आप मौजूदा सरकार पर सख्त टिप्पणी के बजाए नोटबंदी के फैसले के असर का थोड़ा इंतजार कर लेते ? पानी को उबलने के लिए भी 100 डिग्री तापमान का इंतजार करना होता है। फिर आप इतने अधीर क्यों हो गए ? कहीं ऐसा तो नहीं कि कांग्रेस पार्टी ने आपको मुंह खोलने के लिए विवश किया और आपने मोदी सरकार को भला-बुरा कह अपना फर्ज निभा दिया ? यह आशंका इसलिए कि दस जनपथ से नियंत्रित होने का आरोप आप पर कई बार लग चुका है। बहरहाल, कांग्रेस पार्टी ने आपसे मोदी सरकार पर हमला बुलवाकर खुद आपको कठघरे में खड़ा कर दिया है। देश आपसे पुनः पूछ रहा है कि आपके नाक के नीचे ही ठगों की टोली देश को लूटती रही और आप हाथ पर हाथ धरे बैठे रहे।

आखिर क्यों ? बेहतर होगा कि आप देश को बताएं कि भ्रष्टाचारियों के खिलाफ कार्रवाई क्यों नहीं की ? देश जानना चाहता है कि अगर आप इतने ही महान अर्थशास्त्री प्रधानमंत्री थे, तो आपकी सरकार अर्थव्यवस्था को रसातल में जाने से क्यों नहीं रोक पायी ? क्या कारण रहा कि विदेशी निवेशक बाजार से भाग खड़े हुए और आप देखते रह गए ? क्या कारण रहा कि ढांचागत परियोजनाओं पर आपकी सरकार कोई ठोस निर्णय लेने में विफल रही और कल-कारखानों एवं उद्योग-धंधों के पहिए जाम हो गए ? देश जानना चाहता है कि कि आप जैसे महान अर्थशास्त्री के प्रधानमंत्री होने के बाद भी आर्थिक सुस्ती का माहौल क्यों बना रहा ? क्या यह सच नहीं है कि तब के वित्त मंत्रालय में मुख्य आर्थिक सलाहकार रहे कौशिक बसु ने अपनी अमेरिकी यात्रा के दौरान वाशिंगटन की संस्था 'कार्नेगी एंडाओमेंट फॉर इंटरनेशनल पीस' में कहा था कि भारत में आर्थिक सुधारों की रफ्तार धीमी है और इसके लिए आपकी सरकार जिम्मेदार है ? क्या यह सच नहीं है कि अमेरिका के प्रमुख अखबार 'ह्वॉल स्ट्रीट' ने भारत के जीडीपी ग्रोथ रेट में कमी, रुपए की कीमतों में गिरावट और स्टॉक मार्केट की दुर्दशा के लिए आपकी नीति को जिम्मेदार ठहराया था ?

(लेखक स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं। ये उनके निजी विचार हैं।)

राष्ट्र-निर्माण के आगे निजी सुख-दुःख का नहीं होता महत्व

प्रणय कुमार

राजनीति संभावनाओं का खेल है। राजनीति में न तो कोई किसी का स्थाई मित्र होता है, न शत्रु। यदि इस सिद्धांत को सत्य मान भी लिया जाय तो भी यह कहना अनुचित न होगा कि हर दल के अपने कुछ सिद्धांत, अपनी-अपनी मूल प्रकृति, अपने-अपने मतदाता-वर्ग होते हैं और ये सब एक दिन में नहीं बनता, बल्कि वर्षों में उनकी अपनी एक पहचान और छवि बनती है। अगर विशिष्ट चाल-चरित्र-चेहरे की बात बेमानी भी हो तो भी जनता के बीच उनकी एक ख़ास छवि होती है, जिसके प्रति वे सजग रहते हैं और उसे बनाए-बचाए रखने की हर संभव कोशिश करते हैं। भारतीय कम्यूनिस्ट एवं भारतीय जनता पार्टी को छोड़कर भारत के अधिकांश राजनीतिक दल कांग्रेस की ही उपज या उसके विस्तार हैं। और यह विस्तार नीतिगत कम, व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाओं या केंद्रीय उपेक्षाओं का परिणाम अधिक रहा है। ऐसे में सत्ता-प्राप्ति के लिए इनकी जोड़-तोड़-तिकड़में समझ में आती हैं, क्योंकि सत्ता में रहे बिना इनके अस्तित्व पर ही संकट के बादल मंडराने लगते हैं। बहरहाल, अखिल भारतीय स्वरूप होने के बावज़ूद कांग्रेस आज अप्रासंगिक हो चली है। इसके कारणों की पड़ताल का न यहाँ अवकाश है, न वह अभिप्रेत ही है। पर, कम्युनिस्ट पार्टी का इस प्रकार रातों-रात अपनी विचारधारा से पल्ला छुड़ाना उसकी वैचारिक निष्ठा कलई खोलने वाला है। यद्यपि उनका इतिहास विचारधारा से परे जाकर सत्ता के लिए समझौते करने का रहा है, पर पहले वह किंतु-परंतु के आवरण में होता था। इस बार उसने उस आवरण का भी परित्याग कर दिया है। ऐसा लगता है कि जैसे अराष्ट्रीय और अराजक विचारों को प्रश्रय-प्रोत्साहन देना ही उसकी एकमात्र नीति-नियति है।

छद्म धर्मनिरपेक्षता के नाम पर भाजपा विरोध का दंभ भरने वाले दलों का मुखौटा आज उतरने लगा है। आज तक जिस भारतीय जनता पार्टी को व्यापारियों की पार्टी बता-बताकर रात दिन कोसा जाता था, आज उसी पार्टी के विरुद्ध वे सभी लामबंद हो रहे हैं, जो अपने-आप को किसानों-कामगारों का रहनुमा बताते नहीं थकते थे। मोदी सरकार के नोटबंदी के फ़ैसले पर जिस प्रकार धुर विरोधियों की गलबहियाँ सामने आ रही है, इससे उनका असली चेहरा जनता के सामने है। यह सिद्ध हो चुका है कि न तो इन्हें धर्मनिरपेक्षता से कोई लेना-देना है, न किसानों-मजदूरों-आम लोगों के सरोकार से, न सुरसा रूपी भ्रष्टाचार से। नोटबंदी को ऐसे राजनेता भी जानें किस आधार पर तुग़लकी फ़रमान बता रहे हैं, जिनकी पार्टी में उनके अलावा किसी और को बोलने का अधिकार तक नहीं। आज वे लोग लोकतंत्र की दुहाई दे रहे हैं, जिनकी पार्टी उनसे प्रारंभ होकर उन्हीं पर ख़त्म हो जाती है। बहुत उदारता दिखाते हैं तो उसमें परिचितों-परिवारजनों को थोड़े-बहुत अधिकार दयापूर्वक दे दिए जाते हैं।

आज भारत की राजनीति द्विध्रुवीय हो गई है। एक तरफ राष्ट्र का भविष्य तो दूसरी तरफ सत्ता-सुख; एक तरफ निजी तात्कालिक हित तो दूसरी तरफ दूरगामी राष्ट्रीय हित; एक तरफ धन का दुरूपयोग कर येन-केन-प्रकारेण सत्ता शिखर तक पहुँचने का वही पुराना खेल तो दूसरी तरफ नैतिकता-शुचिता के नए युग का शुभारंभ; एक तरफ ईमानदारी से जीने का संकल्प तो दूसरी तरफ़ बेईमानी का अंतहीन दुष्चक्र; एक तरफ़ उम्मीद का सुनहला सूरज तो दूसरी तरफ़ नाउम्मीदी की काली-अंधेरी रात; अब ये तय तो जनता ही करेगी कि इस निर्णायक और ऐतिहासिक क्षण में उसे निर्माण का हिस्सा बनना है या विध्वंस का; उसे कंधे मज़बूत कर, एड़ी टिका उम्मीद के उस सुनहले सूरज को धरती पर उतार लाना है या भावी पीढ़ी के लिए भयानक-काली-अंधेरी रात छोड़ जाना है। जनता निश्चित तौर पर निर्माण का ही हिस्सा बनेगी।

याद रखिए युद्ध या निर्माण-काल में निजी सुख-दुःख नहीं देखे जाते! भविष्य को उज्ज्वल बनाने के लिए यदि वर्तमान में थोड़ा कष्ट सहना पड़े तो सह लेना चाहिए। पीड़ा में ही आनंद पलता है। प्रसव-पीड़ा को सहे बिना मनुष्य तक का निर्माण संभव नहीं, यह तो एक राष्ट्र के नव-निर्माण का सवाल है। यदि आज हिम्मत नहीं दिखाई गई तो करोड़ों भारतीयों की उम्मीद हार जाएगी, यह केवल देश की उम्मीदों का सवाल है। यदि आज हिम्मत हार दी गई तो भविष्य में कोई भी द्रष्टा, निर्माण का कोई भी प्रणेता-साहसिक पहल और प्रयोग की हिम्मत नहीं जुटा पाएगा। परन्तु, सुखद बात यह है कि यह देश हिम्मत के साथ मुश्किलों को पार करते हुए निर्माण के नव अध्याय की रचना की तरफ अग्रसर है।

(लेखक स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं। ये उनके निजी विचार हैं।)

संसद ठप्प करने की नकारात्मक राजनीति से बाज आयें विपक्षी दल

आदर्श तिवारी

संसद का शीतकालीन सत्र समाप्त होने में चंद दिन शेष बचे हैं और अबतक का यह पूरा सत्र हंगामे की भेंट चढ़ता दिखाई दे रहा है। नोटबंदी को लेकर विपक्षी दल लोकतंत्र के मंदिर संसद मे जो अराजकता का माहौल बनाए हुए हैं, वह शर्मनाक है। सरकार नोटबंदी पर चर्चा को तैयार है, लेकिन विपक्षियों को तो चर्चा चाहिए ही नहीं, क्योंकि चर्चा में वे टिक नहीं पायेंगे, इसलिए बस फिजूल का हंगामा कर संसद का वक़्त और देश का पैसा बर्बाद कर रहे हैं। वे जनता की आड़ में अपने राजनीतिक स्वार्थों और झूठी प्रतिष्ठा की लड़ाई लड़ने में मशगूल हैं। ऐसे कठिन समय में और इतने गंभीर मुद्दे पर भी ये विपक्षी दल अपनी ओछी राजनीति से बाज़ नहीं आ रहे। नोटबंदी पर चर्चा करने की बजाय कांग्रेस समेत अन्य विपक्षी दल अपने अनुसार राजनीतिक रोटियां सेंक रहे हैं। टकराव की ऐसी स्थिति बनी है कि समस्याओं को लेकर जो व्यापक बहस दिखनी चाहिए, वो महज विपक्ष की हुल्लड़बाजी तक सीमित होकर रह गई है। सदन को ठप्प हुए दो सप्ताह से अधिक समय बीत चुका है तथा सत्र भी अब समाप्त होने वाला है, लेकिन संसद में कामकाज न के बराबर हुआ है। इस गतिरोध को देखते हुए सत्तारूढ़ भाजपा के वरिष्ठ नेता लालकृष्ण आडवाणी ने नाराजगी जताई है। यही नहीं, आडवाणी जी ने संसदीय कार्यमंत्री व लोकसभाध्यक्ष से अपील भी की कि सदन में हल्ला मचाने वाले सांसदों को सदन से बाहर कर उनके वेतन में कटौती की जानी चाहिए। आडवाणी की फटकार के अगले ही दिन राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी ने भी विपक्षी सांसदों को आड़े हाथो लेते हुए अपील की कि संसद में गतिरोध समाप्त कर काम शुरू किया जाए। लेकिन, महामहिम के अपील का भी कोई असर इन विपक्षी माननीयों पर होता हुआ नहीं दिख रहा है। सरकार की तरफ से भी शांति की तमाम कोशिशें की गईं, मगर लगता है कि विपक्ष सोचकर ही बैठा है कि काम नहीं, बस हंगामा करना है।

संसद चर्चा का वो मंच है, जहाँ जनता से जुड़े मुद्दों और समस्याओं पर हमारे द्वारा चुनकर भेजे गये प्रतिनिधि सकारात्मक चर्चा करते हैं और समस्याओं का समाधान खोजते हैं। लेकिन, अब हमारी संसद से सकारात्मकता विलुप्त होती चली जा रही है, हर मुद्दे पर बहस की जगह हंगामे ने ले लिया है। विपक्षी दलों को लगता है कि विरोध करने का सबसे सही तरीका यही है कि संसद के कार्यवाही को रोक दिया जाये, विपक्ष को इस तरीके को बदलना होगा। उसे आम जनता से जुड़ी समस्याओं को लेकर विरोध करने का हक है, उसे समस्याओं को लेकर सरकार को घेरने का अधिकार है, किन्तु सदन की कार्यवाही को रोकना किसी भी स्थिति में सही नहीं है।

नोटबंदी का फैसला जैसे ही सामने आया विपक्ष के रुख को देखकर अंदाज़ा हो गया था कि संसद तो चलने से रही और हुआ भी यही। सत्र शुरू होने के साथ ही विपक्ष ने नोटबंदी पर चर्चा की मांग की, सरकार विपक्ष की इस मांग को स्वीकार करते हुए चर्चा को राजी भी हो गई। किन्तु, विपक्ष हर रोज़ नई शर्तों के साथ हाजिर होने लगा। पहले विपक्ष ने कहा कि प्रधानमंत्री की उपस्थिति होना जरूरी है, प्रधानमंत्री भी उपस्थित हो गये। तब विपक्ष ने दूसरी चाल चली और मतदान के नियमानुसार चर्चा की जिद पकड़ कर बैठ गया। समझना आसान है कि विपक्ष की इच्छा संसद चलने देने की नहीं है और इसीलिए वो रोज नयी-नयी मांगों और शर्तों के साथ हंगामा कर रहा है।वैसे यह कोई पहली बार नहीं है कि विपक्ष ऐसा रुख अख्तियार किया हो, अब तो कमोबेश ये लगभग हर संसद सत्र की कहानी बन गई है।

ये विपक्षी दल शायद यह मानने को तैयार ही नहीं हैं कि अभी केंद्र में एक ऐसी सरकार है, जिसे जनता ने पूर्ण बहुमत देकर सत्तारूढ़ किया है, अतः इस जनमत का सम्मान और सहयोग किया जाना चाहिए। अगर विपक्ष को नाराजगी है, असहमति है तो वो चर्चा में तार्किक ढंग से उसे उठाये, लेकिन संसद को ठप्प करने का ये जो तरीका उसने अख्तियार किया है, ये सिर्फ उसे हानि ही पहुंचाएगा। विपक्षी दलों का ये रवैया न केवल भारतीय लोकतंत्र के लिए अनुचित है, बल्कि खुद उनके प्रति भी जनता में नकारात्मक सन्देश प्रसारित करने वाला है। वे जितनी जल्दी इसे बदल लें, उतना ही बेहतर होगा।

(लेखक स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं। ये उनके निजी विचार हैं।)

समय की मांग है नकदी रहित अर्थव्यवस्था

पीयूष द्विवेदी

8 नवम्बर को केंद्र की मोदी सरकार द्वारा देश में पाँच सौ और एक हजार के नोटों को प्रतिबंधित कर दिया गया और फिर इनकी जगह पाँच सौ और दो हजार के नये नोटों की शुरुआत की गई। चूंकि, पाँच सौ और हजार के पुराने नोट देश की कुल नकदी का ८६ प्रतिशत थे, इसलिए इनका प्रतिबंधित होना देश की अर्थव्यवस्था से लेकर आम जनों की घरेलू आर्थिकी तक को सीधे-सीधे प्रभावित करने वाला था। बैंकों के आगे पुराने नोटों की बदली करने से लेकर उन्हें जमा करने तक के लिए लोगों की कतारें लगने लगीं और कमोबेश अब भी लगी ही हैं। स्वाभाविक रूप से इस विमुद्रीकरण की प्रक्रिया में लोगों को परेशानी हुई है। मगर, बावजूद इसके जमीनी पड़ताल से लेकर विविध सर्वेक्षणों के आंकड़ों तक इस विमुद्रीकरण पर बहुमत में जनता का यही मिज़ाज सामने आ रहा कि यह निर्णय सही है और इसमें वो सरकार के साथ है।

यह सही है कि विमुद्रीकरण एक आर्थिक प्रक्रिया है और जब किसी भी अर्थव्यवस्था में काले धन और नकली नोटों का प्रवाह अधिक हो जाता है, तब सरकारें इसे अपनाती हैं। लेकिन, यह भी एक सच्चाई है कि ये विमुद्रीकरण अपने आप में थोड़ा अलग और ऐतिहासिक है। कारण कि इसे अत्यंत गोपनीय ढंग से घोषित किया गया तथा इसके बाद ज़रा भी समय नहीं दिया गया कि काला धन रखने वाले अपनी संपत्ति को ठिकाने लगा सकें। इस गोपनीयता और आकस्मिकता के कारण लोगों को थोड़ी समस्याएँ भी हुईं, मगर यही इस निर्णय का मास्टर पंच भी है।

देश में नकदी के रूप में मौजूद काले धन का खात्मा तो इस विमुद्रीकरण का एक पहलू है, लेकिन इसके साथ ही इसे भारतीय अर्थव्यवस्था को नकदी रहित अर्थव्यवस्था का रूप देने की दिशा में भी एक महत्वपूर्ण कदम बताया जा रहा है। हाल ही में नीति आयोग के मुख्य कार्यकारी अधिकारी अमिताभ कांत ने कहा है कि भारत में महाशक्ति बनने की ताकत है और यह ताकत देश के करोड़ों युवाओं के भरोसे है। इसके साथ ही उन्होंने कहा कि वह दिन दूर नहीं, जब भारतीय अर्थव्यवस्था नकदी रहित और पेपरलेस हो जाएगी। नकदी रहित अर्थव्यवस्था की यह उम्मीद ठीक भी है, क्योंकि इस विमुद्रीकरण के बाद नकदी के अभाव में लोगों ने ज्यादातर ऑनलाइन खरीद-फरोख्त का रुख किया है। एक आंकड़े के मुताबिक़ इस निर्णय के बाद देश के ऑनलाइन भुगतान में तीन सौ प्रतिशत तक इजाफा हुआ है। साथ ही, पेटीएम, मोबिक्विक और फ्रीचार्ज जैसी ऑनलाइन पेमेंट कंपनियों के उपयोग में भी भारी वृद्धि बताई जा रही है। सरकार ने भी इस सम्बन्ध में सरकारी-नागरिक लेन-देन के लिए अपना एक पैनल स्थापित कर दिया है, जो इस सम्बन्ध में सरकार की गंभीरता का ही एक और उदाहरण है। इन सब से मोटे तौर यह आंकलन निकलता है कि नोटबंदी के बाद देश का वो वर्ग जो इन्टरनेट पर सक्रिय है, ने नकदी के अभाव में ऑनलाइन भुगतान की तरफ ध्यान दिया है। इसी संकेत के मद्देनज़र यह अनुमान व्यक्त किया जा रहा है कि विमुद्रीकरण के इस निर्णय के बाद देश नकदी रहित अर्थव्यवस्था की तरफ बढ़ रहा है।

उल्लेखनीय होगा कि भारतीय अर्थव्यवस्था के सकल घरेलू उत्पाद का लगभग चौदह प्रतिशत हिस्सा अभी नकदी के रूप में है। आर्थिक विशेषज्ञों का ऐसा मानना है कि एक अच्छी और मजबूत अर्थव्यवस्था में नकदी की मात्रा पांच प्रतिशत के नीचे होनी चाहिए, इस लिहाज से भारतीय अर्थव्यवस्था में नकदी की मात्रा बहुत अधिक प्रतीत होती है। यह अमेरिका और ब्रिटेन जैसी विकसित अर्थव्यवस्थाओं में मौजूद नकदी की मात्रा से अधिक है तो वहीँ, जापान जैसी विकासशील अर्थव्यवस्था से कम भी है। अब वित्तमंत्री अरुण जेटली की मानें तो इस नोटबंदी का एक लक्ष्य देश की अर्थव्यवस्था में से नकदी की मात्रा को कम करना भी है। नकदी रहित अर्थव्यवस्था के अनेक लाभ हैं। नकदी रहित अर्थव्यवस्था में कर चोरी पर लगाम लगेगी, जिससे काले धन का संग्रह रुकेगा, जाली नोटों पर भी लगाम लगेगी और इन सबके परिणामस्वरूप देश में समानान्तर अर्थव्यवस्था की संभावनाएँ क्षीण होंगी। इसके अलावा जब लोग अपना अधिकांश पैसा बैंकों में रखेंगे तो बैंकों की वित्तीय स्थिति मजबूत होगी और वे विकास की दिशा में निवेश को प्रोत्साहित कर सकेंगे। भारतीय रूपये की दशा में सुधार आने की भी संभावना बनेगी। इस तरह स्पष्ट है कि नकदी रहित अर्थव्यवस्था के अनेक लाभ होंगे, यही कारण है कि सरकार इस दिशा में आशावान और प्रयासरत दिख रही है।

भारत में नकदी रहित अर्थव्यवस्था की सबसे बड़ी चुनौती यह है कि हम अभी तकनिकी रूप से उस स्तर तक नहीं पहुंचे हैं कि इतनी बड़ी आबादी वाले देश को नकदी के बिना संचालित कर सकें। इंटरनेट की पहुँच अभी देश के ग्रामीण क्षेत्रों में ठीक प्रकार से नहीं हो सकी है। एक आंकड़े के अनुसार, अभी देश भर में इंटरनेट उपभोक्ताओं की संख्या कुल आबादी की चालीस प्रतिशत ही है, इसमें भी निरंतर रूप से ऑनलाइन भुगतान को लेकर सजग लोगों की मात्रा काफी कम है। ये वो समस्याएँ हैं, नकदी रहित अर्थव्यवस्था की दिशा में बढ़ने के लिए जिनका निर्मूलन आवश्यक है।

देश में नकदी रहित अर्थव्यवस्था के उपर्युक्त पक्षों को देखने के बाद सवाल उठता है कि ये व्यवस्था भारत की दृष्टि से कितनी उपयुक्त है ? दरअसल इस व्यवस्था के सम्बन्ध में जितनी भी समस्याओं और संकटों का उल्लेख ऊपर किया गया है, उनमें से कोई भी ऐसा नहीं है, जिससे एक

क्रमिक प्रयास के जरिये पार न पाया जा सके। उपर्युक्त अधिकांश समस्याओं से मुक्ति के लिए सिर्फ दो ही चीजों की जरूरत है – देश को सम्बंधित क्षेत्र की तकनिकी क्षमताओं से युक्त बनाना और लोगों में नकदी रहित अर्थव्यवस्था के प्रति जागरूकता का विकास करना। वैसे भी, भारत जैसे बड़े देश के लिहाज से नकदी रहित अर्थव्यवस्था अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि यहाँ जितनी अधिक नकदी होंगी, वो समस्याएँ भी उतनी ही अधिक और जटिल पैदा करेगी। इसलिए नकदी रहित अर्थव्यवस्था की दिशा में बढ़ना ही समय की मांग है। अच्छी बात ये है कि मौजूदा सरकार इस दिशा में गंभीर दिख रही है और उससे भी अच्छा ये है कि देश के बहुसंख्य आम जनमानस में मौजूदा सरकार, खासकर प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी, की इन नवाचारी परिकल्पनाओं और निर्णयों के प्रति विश्वास दृष्टिगत हो रहा है। लोक का तंत्र के प्रति ये विश्वास व सहयोग बना रहे और तंत्र देश के अर्थतंत्र को नकदी के मकड़जाल से मुक्त करने के लिए यूँ ही अगर प्रयासरत रहे तो आश्चर्य नहीं कि अगले कुछ वर्षों में ही ये देश नकदी रहित अर्थव्यवस्था का निर्माण कर लेगा।

(लेखक स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं। ये उनके निजी विचार हैं।)

Tracing history of black money: Past and present

DR. ANIRBAN GANGULY

Amit Shah's point that the BJP has been fighting against black money since the days of the Jana Sangh has put many in the spot, especially the Congress, which allowed this practice and habit to grow.

During a media tête-a-tête last week, BJP president Amit Shah publicly spoke of the need to eradicate the role of black money in electioneering. He argued that the demand made by the BJP today is not something new; it had been doing so since the days of the Bharatiya Jana Sangh. "What matters to us and towards which we wish to work is the eradication of the role of black money in our elections", Shah said, without mincing words.

Naturally, such a stance has put a number of others in a spot — one can see the extreme manifestations of their discomfiture through a continuous theatrical performance, both inside and outside Parliament. The Congress is, perhaps, the hardest hit with such a stance; historically it is one party which has allowed this practice and habit to grow to gargantuan proportions. In fact Shah was right when he said that it was during the Congress rule that the nation suffered from the paralysis of black money and the process of demonetisation was a surgery that was required to free the nation from the clutches of such a debilitation.

It is perhaps after a long hiatus — the last ones who spoke passionately on the issue of tackling the role of black money in elections was perhaps Jayaprakash Narayan, C Rajagopalachari and Nanaji Deshmukh — that such a discourse is taking centre-stage and the president of the largest as well as the ruling party is seen talking in no uncertain terms on the need to neutralise this parasitical disease which is silently eating away at the crucial entrails of our democratic polity. This, in itself, is a heartening development and must be welcomed by all those who wish to see a true cleansing and reform of our election system gradually take place. In fact, as early as 1959, writing to one of his private secretaries, Rajendra Prasad, then President of the Indian Republic, had expressed a deep concern of this growing trend of corruption and had hoped that someday someone would have the gumption to undertake drastic measures. "Are we really walking on mines which may burst any day?" he wrote, "I hear that people are freely talking about corruption, bribery, nepotism…" Prasad called for probe and a "drastic remedy".

Prasad's colleague and leader Jawaharlal Nehru, however, exuded ambivalence when it came to tackling corruption and black money. Over 15 years after he became the Prime Minister, Nehru astonishingly argued, "Corruption is… the result of the democratic process; and I am a little afraid that as this process grows, corruption is going down to the villages." The authors of an assessment of Nehru's premiership observe, "Surprisingly, Nehru's Government found no means to bring to book black-marketeers, adulterators and others indulging in dangerous anti-social activities. In a democratic set up none expected Nehru to hang every black-marketeer from the nearest lamp-post [as he had once famously pledged to do], but if, in West Bengal alone, the Congress Government could between 1947-58 jail over "one hundred thousand people connected with the democratic movements of different sections of the people," the country surely had the right to expect the Prime Minister to be equally ruthless towards corrupt and corrupting men."

Towards the end of his life, Nehru's ambivalence towards corruption had aggravated, in November 1963 he told his partymen that "the talk of graft and corruption in India is exaggerated" while the president of his party — at that point of time N Sanjeeva Reddy — had warned that the "organisation had lost its prestige because many Congressmen who, before independence, had been paupers had by now become millionaires." Nehru immediately modified his stance, adding that "unless corruption was rooted out from every walk of life all talk of socialism would be meaningless." Gradually the search for his socialist utopia led to the creation of a cronyism and kickback-based system where hoarding and black economy became the order of the day. His daughter did little to cleanse the system and, instead, reinforced and institutionalised the habit of graft and promoted cronies and did much to weaken the democratic system by often subverting the electoral process; her descendents further perfected that approach.

As early as 1961, Pandit Deendayal Upadhyaya had spoken of how a section with ill-gotten wealth was being enlisted in elections. "…A number of people are given tickets", he pointed out, "for no other qualifications than their capacity to spend money. These people come in the field at election time and then hibernate for five years in the crowded bustees of Calcutta and Bombay. They do not come to the people to solicit their votes but to purchase them. They do not apply or qualify for the party ticket but purchase it. For them no price is too high. All that they want is to grease their way to the Parliament. For them it is a business deal…"

Shah's point that this struggle against black money was not a new found cause by the BJP and that the party has been highlighting the issue of black money since the days of the Jana Sangh bears merit — at least activists and leaders with a sense of history will appreciate it. Those parties which have in any case lost their sense of history, their ideological moorings and have come to rely on the wisdom of imported academics and leaders, will scarcely internalise such an allusion.

In its first party document, released on its founding day on October 21, 1951, under Syama Prasad Mookerjee, the Jana Sangh referred to a "horde of problems" besetting India, both "internal and external, old and new, which instead of nearing solution after independence are daily getting aggravated…Its production is falling, black marketing and profiteering are rampant and charges of corruption and favouritism against the administration…" are growing.

Jana Sangh's economic resolution, 'Economic Situation in the Throes of a Holocaust', in its April 1974 session at Ujjain, spoke unequivocally on the need to eradicate black money. "The Indian economy", it noted, "is diseased, and present order of privileges, licences, black money, and quotas is suffering from incurable cancer. Nothing short of a major overhaul can reverse the unerring descent to disaster." Proffering detailed suggestions, the resolution said, among other things, that "Currency should be demonetised to unearth present hordes of black-money."

While the previous ruling dispensation was tight-lipped on this need and rapaciously and routinely indulged in scams, Prime Minister Narendra Modi took to serving the bitter brew that would start sweeping the system clean.

(The writer is s senior columnist. This article was published first in The Pioneer)

By-Poll Results : End game anti-demonetization crusaders ?

AJAY KASHYAP

Ever since the 8th of November, 2016 when our Prime Minister announced the demonetization scheme whereby Rs.500 and Rs.1000 ceased to be legal tender, political opponents have taken to the streets claiming it to be a move that is 'anti-aam aadmi.' The likes of Delhi CM Arvind Kejriwal and Bengal CM Mamta Didi have left no stone unturned to throw unsubstantiated and uncorroborated accusations at the Prime Minister, Didi going to the extent of saying that "We will remove PM Modi from politics."

The desperation and worry of these leaders can be clearly seen from such statements. One wonders why leaders like Kejriwal who made it into politics after crusading against black money and corruption are not supporting this move which is the most significant and courageous move taken by any Government since Independence against black money.

After the Demonetization move, by-polls were held for four Parliamentary and ten Assembly seats across several states like Assam, Arunachal Pradesh, West Bengal, Tripura, Madhya Pradesh, Tamil Nadu – and one union territory, Puducherry. In addition to this, there were Municipal Council and Nagar Panchayat polls in Maharashtra. It was argued by political scientists that these by-polls will be a litmus test for BJP after Demonetization and the results of these polls will be a clear indication whether this move of the Government was indeed 'Anti-aamaadmi.' The results of these polls have come as a surprise to all the critics of PM NarendraModi and his Government.

In states like Assam, Arunachal Pradesh and Madhya Pradesh where BJP was in a direct contest, the party won impressively. In Assam, not only did the BJP retain the Parliamentary seat vacated by CM Sarbanada Sonowal, it also gained an assembly seat which was previously held by the Congress. In Arunachal Pradesh, wife of Former CM Late KhalikoPul, Smt. DesinguPul contested on a BJP ticket and won by a handsome margin. In Madhya Pradesh, the BJP retained the LokSabha and Assembly seats winning them by a healthy margin. Although the TMC fared well in the by-polls of Bengal, credit must be given to BJP for coming second in one-time Left bastion of Coochbehar and pushing the Forward Bloc to a distant third position.

However, the best results for the BJP came from Maharashtra. Elections for Municipal Councils and Nagar Panchayats were held wherein the BJP surged ahead by winning 851 of 3510 seats up from 396 seats in 2011. The Government of Maharashtra this time introduced direct elections for the post of President in 147 Municipal Councils; the BJP won 52 of these seats with alliance partner Shiv Sena winning 23 seats. BJP seems to have wrested the Western-Maharashtra belt from the NCP and the Congress, the stronghold of leaders like Sharad Pawar.

Prime Minister tweeted post the results "a win for pro-poor & development politics of BJP". It is true that the common tax paying citizens of our country are happy with this decision of demonetization and content with the Government's measures to tackle cash crush. However, power hungry and scam tainted politicians like 'Didi' seem to have made up their mind in opposing any and every move of the Modi Government terming it as 'Anti-aamaadmi.' Attention seeking politicians like Delhi CM Kejriwal seem to have forgotten the mandate given by the people of Delhi and keep wasting their time on unnecessary banter on twitter against the PM instead of trying to solve the innumerous issues plaguing the common citizens of Delhi.

Rahul Gandhi on being asked about the long queues in Banks in one of the interviews said, "Janta Kamzor hai"; what a shame that even after 60 years of Congress rule which was mostly a Gandhi-Nehru family rule, the people are still "weak." Little does he realise that as seen by the by-poll results, Congress party is on death bed and if he continues his antics, we will soon see a 'Congress Mukt Bharat.'

It is clear by the theatrics of the opposition leaders that there are too many aspirants for the post of Prime Minister in 2019. However, a divided opposition is nothing but an asset to BJP and PM Modi. Amidst this drama, there was some hope and maturity shown by leaders like Bihar CM Nitish Kumar who went public in his support for demonetization.

All in all, one can conclude that the honest tax paying citizen is happy and willing to be inconvenienced for a few weeks for a better future but it is the corrupt and ambitious politicians who are having sleepless nights post November 8th. The nation must come together and support this move that will help in combating social evils like corruption, black money, terrorism and counterfeiting of Indian currency.

(The writer is a columnist.)

Support for Demonetisation is Wide – only the Unwise and Unethical Oppose it

DR. ANIRBAN GANGULY

In a little over 24 hours since he called for a feedback, over 5 lakh people responded to PM Narendra Modi's call and proffered their views on the move of demonetisation. In a truly participative exercise, a "Jan ki Baat" in the true sense, Prime Minister Modi reached out to the people directly and asked them to discuss his effort at eradicating black money and corruption through this move. The respondents overwhelmingly supported the move saying that it was necessary for comprehensively tackling corruption at various levels and for making the economy robust and resilient in the long run. The vast majority of the people of India have this earthy sense of purpose and know when a step is taking in earnest for their well-being. This direct outreach has demonstrated the faith that people at large have in the Prime Minister and in his move to cleanse the economy. People are willing to put up with inconveniences and roundly support the effort. With the Prime Minister's Office closely monitoring the situation and development, the responsiveness of the government to the situation and to suggestions is distinctly visible on the ground, leading to positive responses to the challenges.

Interestingly or ironically, those political parties and leaders who have made great capital in the name of fighting corruption and who have in the past, periodically called for cleansing public life and earned various sobriquets and laurels are the one who are howling most and loudest against this onslaught on black money and that too in the name of the "common people." Take the case of West Bengal Chief Minister Mamata Banerjee, for example, she has been rabble rousing the streets of Delhi ever since the announcement of demonetisation was made. Ms. Banerjee professes to speak up for the "common people" while throwing up her irrational tantrums and ire at the Prime Minister who has himself said that this move was aimed at empowering the marginalised.

It would be useful to recall that as Chief Minister , Mamata Banerjee presided over the Saradha Chit Fund scam, a scam of gigantic proportions involving about Rs. 2460 crores. A number of her political and social associates were involved in the Saradha issue and were in the know. The Saradha Chit fund scam left a trail of deaths and robbed the poor of their hard earned savings. Ms. Banerjee did not take to the streets then, choosing to remain silent or distancing herself from it all. She did not take out processions in support of the poor or the "common people" in whose name she has built a career in politics. Having often cried out against corruption, it is strange to see her today vocally oppose a historic move that is aimed at curbing and eventually eradicating the corroding malady of black money. Ms. Banerjee never issued any statement expressing support or concern for those family whose earning members committed suicide unable to bear the loss of their savings because of the Saradha Scam.

Even at the level of governance Ms. Banerjee has been acutely insensitive to the plight of the tea garden workers. Conservative estimates point out that over 70 recorded starvation deaths have already occurred in the tea gardens of north Bengal in her tenure and each time she has either chosen to ignore or argue herself and her administration out of it. Starvation, penury, malnutrition and lack of access to medical facilities have led to these deaths and yet despite being in power now for over five years she has done precious little to alleviate the suffering and to improve the status of the tea garden workers. The Left Front rule in West Bengal has also been equally disastrous and "common people" have suffered most – with the breakdown of rural infrastructure, industry, healthcare and education.

While some propagate their concern for the poor because of political reasons or simply because it is fashionable to do so, Prime Minister Modi's government has consistently and constantly striven for the empowerment and inclusion of the marginalised. In fact its governance and policy focus has been to realise that objective. Professing to work for the empowerment and uplift of the poor while opposing policies and efforts that actually ensure their empowerment is not only not ethical politics, it is not wise politics either. Those who overlook that are in the long run, as they say, politically rejected or politically dead…

(The writer is a columnist.)

Demonetisation and the vanishing stone-pelters of Kashmir

AJAY KASHYAP

It is no secret that our notorious western neighbour is fuelling tensions in the valley. For almost 20 weeks since the killing of terrorist Burhan Muzaffar Wani, the valley was completely shut due to protests sponsored by separatists.

However, within 10 days of the historic and bold move of the Modi Government on demonetisation, the valley has sprung back to life. The question being asked is: Why did the unrest stop all of a sudden after demonetisation? It goes on to prove that the stone-pelters were in fact paid for this job and that they owe no allegiance to these separatists who call for a 'Azad Kashmir'

Class 12th students defied the separatists call for a boycott and around 95 per cent students appeared for their board exams, one of the highest seen in recent years. These are all poof that the feeling in Kashmir is not what the mainstream Indian media has been projecting. Defence Minister Manohar Parrikar had said that these stone-pelters were paid Rs 500 each for targeting the security forces. Clearly, demonetisation has affected to an extent terror-funding in the valley.

It remains to be seen how our 'human rights' activist justify this sudden decline in stone pelting. For long, these activists, who are apologists for terrorists and separatist forces, had claimed the Indian state to be the aggressor and supported the cessation of Kashmir from India. With protests dying down in the valley, it is a clear indication that, though all may not be well, there is certainly hope for a better future in Kashmir after this courageous move by the Union Government.

Intelligence sources had in the past pointed out how hundreds of crores of rupees were pumped in, and in most cases, fake Indian currency was being used by these 'angels of azadi' to disrupt normal life in Kashmir. But the 'secular' Governments of the past didn't move an inch to curtail this menace. Now that there is a Government which has shown the spine to work against the anti-national forces and try to bring peace to the valley, the secularists are unable to stomach this fact.

However, one must understand that all is not well. This is a temporary phase and Pakistan will be back at what it does best. Therefore, the Indian Government and the civil society must use this time to engage with the common Kashmiris, recognise their needs and aspirations and try to find solutions. Kashmiriyat will prevail if we sit across the table and try to understand each other. After all, Kashmiris are our people and Kashmir is an integral part of India.

Pakistan on the other hand will try to deflect the attention of the world community from the atrocities it commits in Gilgit-Baltistan and Balochistan by invoking trouble in Kashmir. It is necessary that we utilise this time to educate the young aspirational Kashmiri about our neighbour's evil plans.

Having said that, it is time that we as Indians come together to applaud this decision of the Prime Minister in his fight against anti-national elements, black money and corruption. Yes, there will be inconvenience for today, but it is worth the pain as we are seeing a Government that is striving hard to ease the problems of the common man and make India a corruption-free country.

(The writer is a columnist.)

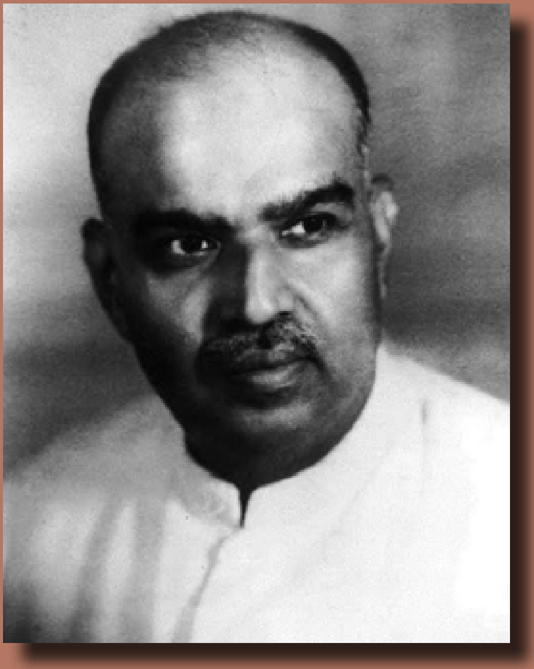

“The gignatic task of reconstruction, cultural, social, economic and political can be rendered possible thought coordinated efforts of bands of trained and disciplined efforts of bands of trained and disciplined Indians. Armed with the knowledge of Indian’s past glory and greatness, her strength and weakness, it is they who can place before their country a programme of work, which while loyal to the fundamental traditions of India civilisation will be adapted to the changing conditions of the modern world.”

-Dr. Syama Prasad Mookerjee
Convocation Address delivered at Gurukul Kangri
Viswavidyalaya, Haridwar, 1943

SPMRF
पराक्रमयुता प्रज्ञा राष्ट्राभ्युदयसाधिका
Wisdom with valour brings glory to the nation

Published By:
Dr. Syama Prasad Mookerjee Research Foundation
9, Ashoka Road New Delhi - 110001
E-mail: office@spmrf.org, Phone: 011-23005850
Web: www.spmrf.org